जैन पारिभाषिक शब्द-कोश : चन्द्रप्रभ

प्राकृत-भारती-पुष्प-७५

प्रकाशक—
प्राकृत भारती अकादमी
३८२६, यति श्यामलालजी का उपाश्रय
मोतीसिंह भोमियो का रास्ता
जयपुर—३०२ ००३ (राज०)

श्री जितयशाश्री फाउंडेशन
६-सी, एस्प्लानेड रो (ईस्ट)
कलकत्ता-७०० ०६६

मुद्रक : सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
कलकत्ता

स्वकथ्य

जैन-दर्शन गणित एवं विज्ञान की विजय का अभिनव स्मारक है। वर्तमान गणित-शास्त्र की कई पेचीदी बातों का यहाँ समाधान है, तो उसके मार्ग-दर्शन एवं उत्साह-वर्धन के लिए ढेर-सारे सूत्र एवं सम्भावनाएं भी है। जैन-गणित इतनी ऊँचाइयों को छूता हुआ नजर आता है कि उसमें प्रवेश करने के लिए भी व्यक्ति को एक अच्छा गणितज्ञ होना अनिवार्य है।

जैन-दर्शन का सम्पूर्ण विस्तार जीवन-विज्ञान के धरातल पर हुआ है किन्तु यह वैज्ञानिक कसौटियों की हर चुनौती का भी स्वागत करता है। विज्ञान की ऐसी कई बातें हैं जिनके लिए जैन-दर्शन मील-का-पत्थर सिद्ध हो चुका है। क्षेत्र चाहे जैविकी हो, भौगोलिकी हो, रासायनिकी हो या भौतिकी, जैन दर्शन में सबकी सम्भावनाएँ मुखर हैं।

जैनत्व धर्म एवं दर्शन का समीकरण है। धर्म, आचार-संहिता का प्रवर्तन है और दर्शन विचार-संहिता का। जैन-दर्शन विश्व के बौद्धिक एवं समन्वयवादी दर्शनों में प्रमुख है। इसलिए इसकी दार्शनिक गहराई उम्दा होनी स्वाभाविक है। प्रस्तुत कोश जैनत्व की धार्मिक एवं दार्शनिक रूढ शब्दावली को खोलने और समझाने का दस्तावेज है।

प्रस्तुत कोश में जैन परिवेश से जुडे उन सभी शब्दो का आकलन करने का प्रयास किया गया है जो आम-तौर पर प्रचलित एवं चर्चित हैं। वैसे हर धर्म, दर्शन के पास कुछ-न-कुछ ऐसी शब्दावली होती है, जिसे वह एक विशेष अर्थ एवं ध्येय के लिए प्रयोग में लाता है। जैन-दर्शन में ऐसी शब्दावली की कोई कमी नही है। जैन-पारिभाषिक शब्द तो बेशुमार/बेहिसाब हैं। प्रस्तुत लघु-कोश मे संग्रहित किये गये शब्दो को सरलता एवं बोधगम्यता के साथ पेश किया गया है। मैंने शब्दो के रूढ अर्थों को तो दिया है, अर्थों की नई सम्भावनाओ का भी स्वागत किया है। शब्द-शक्ति का ह्रास एव विकास दोनों सम्भावित है। शब्द में जो अर्थ व्याप्त है या स्वीकृत है, उसकी सम्प्रेषणीयता की सुरक्षा आवश्यक है।

आशा है, यह कोश स्नातक विद्यार्थियो के लिए तो उपयोगी होगा ही, आम-जैन भी इसे खूब चाव से पढ़ेगा और अनबूझे शब्दो की गहराई में डूबकर निहाल होगा।

२८ नवम्बर, १९९०

चन्द्रप्रभ

जैन पारिभाषिक शब्द-कोश

अ

अकर्मबन्ध—जीव-प्रदेशों को आबद्ध करने वाला मार्ग।

अकषाय—विकारों से मुक्ति।

अकाम-निर्जरा—अवाञ्छित सहिष्णुता द्वारा होने वाला कर्म-क्षय।

अकाम-मरण—१. निष्काम-मरण। २. विना चाहे होने वाली मृत्यु।

अकायिक—स्थूल और सूक्ष्म शरीर रहित आत्मा; अयोगी-केवली; सिद्ध।

अकाल मृत्यु—मृत्यु के निर्धारित समय से पूर्व शरीरान्त होना।

अकिञ्चनता—सम्पूर्ण अपरिग्रह-वृत्ति।

अकिञ्चित्कर-हेत्वाभाव—साध्य की सिद्धि के लिए प्रत्यक्ष आदि से बाधित हेतु।

अकृत-समुद्घात—मृत्यु के समय शरीर के संकोच-विस्तार से रहित केवली-अवस्था।

अक्रियावाद—परलोक-विषयक आचार-विचार को अस्वीकार करने वाला दर्शन।

अक्ष—आत्म-तत्त्व।

अक्षत—अखण्डित चावल।

अक्षौहिणी—सैन्य-परिणाम, जिसमें नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, नौ करोड़ घोड़ा और नौ अरब पदाति / थल-सैनिक होते हैं।

अगति—आवागमन का अभाव।

अगाढ़—अस्थिर श्रद्धान।

अगारी—घर-गृहस्थी का इच्छुक।

अगुरुलघु—१. गुरुत्व और लघुत्व के अभाव का नाम, २. सिद्धों में प्राप्त द्रव्य एवं गुणों का साम्य।

अगृहीत मिथ्यात्व—परोपदेश निरपेक्ष जन्मजात तात्त्विक अश्रद्धान।

अग्निकायिक—अग्नि रूप शरीर। वे जीव जिनका शरीर अग्नि स्वरूप होता है।

अग्रबीज—कलम से उत्पन्न होने वाली वनस्पति।

अङ्ग—१. आगमों का एक वर्ग विशेष। २. शरीर के अवयव।

अङ्गार—आहार से सम्बन्धित एक दोष; अति तृष्णा से आहार ग्रहण करना।

अङ्गुल—क्षेत्र की परिधि मापने के लिए आठ जूं विस्तार का एक मापक।

अङ्गोपाङ्ग नामकर्म—शरीर के अवयवों की रचना में कारण-भूत कर्म विशेष।

अचक्षुदर्शन—चक्षु को छोडकर इन्द्रिय और मन से होने वाला सामान्य बोध।

अचित्त—१. निर्जन्तुक, २. ग्राह्य पदार्थों के सचित्ताचित्त का विचार, ३. प्रासुक।

अचेलक—वस्त्र आदि का परिग्रह त्याग करने वाला मुनि।

अचौर्य—१. देय/ग्राह्य वस्तु के साथ संक्लेश-परिणाम रहित प्रवृत्ति, २. न्याय-निष्ठापूर्वक आजीविका-उपार्जन, ३. तीसरा अणुव्रत/महाव्रत।

अजीव—चेतना-शून्य, अनुभव-रहित पौद्गलिक निर्जीव तत्त्व।

अज्ञ—भव्यत्व रहित प्रज्ञा-हीन जीव।

अज्ञात भाव—प्रमादवश अज्ञान प्रवृत्ति।

अज्ञात-सिद्ध—विना जाने प्रमादवश अपने मत की पुष्टि।

अज्ञान—आत्म-स्वभाव विमुख मिथ्या ज्ञान।

अष्ठम—तीन दिन का पूर्ण उपवास।

अणिमा—१. सूक्ष्मतम शरीर निर्माण करने वाली शक्ति विशेष, २. अत्यन्त छोटा बनने की शक्ति। ३. प्रथम सिद्धि।

अणु—पुद्गल का सूक्ष्मतम अविभाज्य अंश।

अणुव्रत—बाह्य और आन्तरिक हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का आंशिक त्याग।

अण्डज—त्रस जीव का एक भेद, अंडो से उत्पन्न होने वाले जीव।

अतिचार—व्रतपालन में शैथिल्य।

अतिथि—१ जिसके आगमन की तिथि अज्ञात है। २. संयम-पालन के लिए चर्या करने वाला मुनि।

अतिथि-संविभाग—न्यायोपार्जित वस्तु-विशेष का सत्पात्र को प्रदान।

अतिव्याप्ति-दोष—लक्ष्य और अलक्ष्य दोनो में लक्षण की विद्यमानता।

अतिशय—विशिष्टता, प्रभाव।

अतीन्द्रिय-प्रत्यक्ष—इन्द्रिय और मन निरपेक्ष आत्मोत्थ ज्ञान।

अतीर्थ-सिद्ध—तीर्थंकर द्वारा तीर्थ प्रवर्तित होने से पूर्व या पश्चात् मुक्ति प्राप्त करने वाली आत्मा।

अत्यन्ताभाव—किसी भाव या वस्तु-विशेष का मूलतः अभाव ।

अदत्त-क्रिया—चोरी की प्रवृत्ति ।

अदत्त-ग्रहण—विना अनुमति के वस्तु-ग्रहण ।

अदत्तादान—पराई वस्तु को अधिकृत करना ।

अदर्शन—वस्तु-बोध का अभाव ; तत्त्व-श्रद्धान् का अभाव ।

अदर्शन-परीषह—दर्शन-विशुद्धि के लिए संकल्प-विकल्प न करना ।

अधर्म-द्रव्य—जीव तथा पुद्गल की स्थिति में सहायक एक अमूर्त-तत्त्व ।

अधः कर्म—हिंसामूलक प्रवृत्ति/कार्यवाही ; साधु के लिये बनाया गया आहार ।

अधिकरण—पापजनक क्रिया, हिंसा का उपकरण ।

अधिगम—प्रमाण और नय के माध्यम से पदार्थों का ज्ञान ।

अधिगमज—परोपदेश से तत्त्व-श्रद्धा का प्रादुर्भाव ।

अधोलोक—पुरुषाकार लोक में कटिप्रदेश का अधोवर्ती भाग ।

अध्यवसान—पदार्थ निश्चय ।

अध्यवसाय—रागात्मक संकल्प-बुद्धि ।

अध्यात्म—आत्मा की स्वच्छता/विशुद्धता का अनुष्ठान ।

अध्यारोप—निराधार कल्पना ।

अध्युपपन्नता—इन्द्रिय-विषयों के सेवन में एकचित्तता।

अध्रुव-प्रत्यय—पदार्थ का न्यूनाधिक अवग्रह।

अध्रुव-बन्ध—विनष्ट पूर्व-बन्ध की पुनः उदय में आने वाली स्थिति।

अध्रुवानुप्रेक्षा—संसार की क्षणभंगुरता का पुनः पुनः चिन्तन।

अनगार—गृही-जीवन का परित्याग करनेवाला संयमी मुनि।

अननुगामी अवधि ज्ञान—स्वामी के साथ अन्य क्षेत्र या अन्य भव में सहचारी न बनने वाला प्रत्यक्ष ज्ञान।

अनन्त—केवल ज्ञान की ही विषय बनने वाली अन्तहीन राशि।

अनन्तकायिक—कंद, मूल आदि अनन्त जीव वाली वनस्पति।

अनन्तानन्त—अनन्त × अनन्त।

अनन्तानुबन्धी—अन्तहीन परम्परा को प्रवर्तित करनेवाला कषाय-भाव।

अनर्थ-दण्ड—निरुद्देश्य पापमूलक कार्य।

अनवस्था-दोष—तथ्यहीन सन्दर्भों पर निरन्तर कल्पनाएँ करते रहना।

अनशन—कर्म-क्षय करने के लिए यथाशक्ति आहार-त्याग।

अनाकांक्ष-क्रिया—आगम-निर्दिष्ट आवश्यक कार्य करने में उपेक्षा-वृत्ति।

अनादेय—निष्प्रभ शरीर का कारण।

अनादेय नाम-कर्म—अच्छा कार्य करने पर भी प्रशंसा में बाधक-कर्म।

अनानुगामिकता—अशुभता की शृंखला।

अनायतन—मिथ्यादर्शन के आश्रयभूत आधार।

अनारम्भ—मन, वचन, काया के हिंसक व्यापार से निवृत्ति।

अनार्य—धर्म-मर्यादा रहित जीव।

अनाहारक—उपभोग्य शरीर के योग्य पुद्गलो को ग्रहण न करनेवाला जीव। विग्रह-गति नाम-कर्म के उदय से होने वाली स्थिति।

अनित्य-अनुप्रेक्षा—जगत की क्षण-भंगुरता का पुनः पुनः चिन्तन।

अनिन्द्रिय—मन; इन्द्रिय-रहित।

अनिन्द्रिय-सिद्ध—मन और इन्द्रिय निरपेक्ष मुक्त-सिद्ध आत्मा।

अनिन्द्रिय-प्रत्यक्ष—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान रूप ज्ञान।

अनिवृत्तिकरण—नौवाँ गुणस्थान; साधक की निर्विकल्प समाधि का नामकरण।

अनुकम्पा—प्राणी-मात्र के प्रति सौहार्द और मित्र-भाव।

अनुगम—वस्तु के अनुरूप ज्ञान।

अनुगामी अवधिज्ञान—स्वामी के साथ अन्य क्षेत्र या अन्य भव में सहचारी बनने वाला प्रत्यक्ष ज्ञान।

अनुग्रह—१ उपकार, २ सम्यग्दर्शन आदि की बढोतरी में सहकारिता।

अनुच्छेद—परमाणु की एक द्रव्य-संख्या से दूसरी द्रव्य-संख्या का बोधक।

अनुज्ञा—सूत्र और अर्थ का प्रतिपादन/अनुमोदन।

अनुपसेव्य—जूठा, जूठना।

अनुप्रेक्षा—चिन्तनमूलक स्वाध्याय, किसी बात का बारम्बार चिन्तवन।

अनुभव—१ अनुभूति। २ विविध प्रकार के फल देने वाली कर्म-शक्ति।

अनुभाग—षड्द्रव्यों की शक्ति का एक अंश।

अनुभाग बन्ध—कषायजन्य वृत्ति से कर्मों में शुभ या अशुभ रस का प्रादुर्भाव।

अनुमति विरत—हिंसक कार्य के लिए स्वीकृत न देने रूप प्रतिमा, आराधना-विशेष।

अनुमान—साधन से साध्य का ज्ञान।

अनुमेय—प्रमेय अनुमान से जानने योग्य वस्तु।

अनुयोग—आगम के शब्द और अर्थ का सम्यक् सयोजन।

अनुवीचि-भाषण—विवेकपूर्वक मधुर सम्भाषण।

अनुवृत्ति—गुण-वैशिष्ट्य की प्रतीति।

अनुश्रेणि—आकाश-प्रदेशों की अनुक्रम से अवस्थित पंक्ति।

अनृत—सत्य के प्रति बगावत।

अनेकान्त—एक वस्तु के बहुआयामी व्यक्तित्व का प्रकाशक।

अनेकान्तिक हेत्वाभास—पक्ष और सपक्ष के समान विपक्ष में भी रहने वाला हेतु।

अन्तरात्मा—बाह्य विषयों से विमुख अन्तर-प्रविष्ट आत्मा।

अन्तराय—दान, लाभ आदि में बाधा उपस्थित करने वाला कर्म।

अन्तर्मुहूर्त—अड़तालीस मिनिट की अवधि; आठ समय से अधिक और दो घड़ी के भीतर का काल।

अन्तर्व्याप्ति—पक्ष में ही साध्य की सत्ता।

अन्यत्व—एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य में भिन्नत्व।

अन्यत्व-अनुप्रेक्षा—अपने स्वरूप को शरीर से भिन्न देखने की भावना।

अन्यथानुपपत्ति—साध्य के अभाव में हेतु का घटित न होना।

अन्ययोग-व्यवच्छेद—विशेषण और विशेष्य की एकरूपता।

अन्यापोह—स्वभाव की भिन्नता।

अन्योन्याभाव—एक वस्तु में अन्य का अभाव जैसे—गाय में घोडे का अभाव।

अन्वय—वस्तु की तादात्म्यमूलक व्यवस्था, कार्य-कारण-सम्बन्ध।

अन्वयी—वस्तु का गुण।

अन्वय दृष्टान्त—साध्य से व्याप्त साधन।

अन्वय-व्यतिरेक—एक हेतु में हेतु से सम्बन्धित सभी अगों की विद्यमानता; पक्ष-धर्मत्व, सपक्ष-सत्व, विपक्ष-व्यावृत्ति, अबाधित विषयत्व और असत्-प्रतिपक्षत्व—इन पाँच रूपों की एक युक्तता।

अपर विदेह—सुमेरु पर्वत के पश्चिम में स्थित विदेह-क्षेत्र का अर्धभाग।

अपराध—पर द्रव्य का अपहरण, पापमूलक कार्य की अभिव्यक्ति।

अपरिग्रह—संग्रह-वृत्ति एवं ममत्व बुद्धि का त्याग।

अपर्याप्त—वे जीव, जिनकी काया अपूर्ण हैं।

अपर्याप्ति—आहार, शरीर आदि की प्रवृत्ति में अपूर्णता।

अपवर्ग—मुक्ति।

अपवर्त—विष, शस्त्र आदि से आयु-स्थिति पर आघात ।

अपवर्तन—अपनी प्रकृति में स्थिति की कटौती या अन्य प्रकृति में उस स्थिति का स्थानान्तरण ।

अपवाद—अपनी सुविधा के लिए समादृत विकल्प ।

अपात्र—तत्त्व-श्रद्धा-विहीन ।

अपाय—श्रेयस्कर साधनो का विनाशक प्रयोग ।

अपायदर्शी—सम्यक्त्व की विनाशक क्रियाओ का प्रेक्षक ।

अपाय-विचय—श्रेयस्कर उपायो का चिन्तन ।

अपूर्वकरण—साधक की अष्टम भूमिका, पूर्व में अप्राप्त आत्म-परिणामो की प्राप्ति एवं वृद्धि ।

अपोह—संशय के कारणभूत विकल्प का अभाव ।

अप्कायिक—जल की देह धारण करने वाले जीव ।

अप्रतिघात-ऋद्धि—अभेद्य पदार्थों में भी प्रवेश करने की शक्ति ।

अप्रतिबद्ध—बन्धन-मुक्त अनासक्त साधु ।

अप्रतिबुद्ध—कर्म और कर्म-फल को आत्मा तथा आत्मा को कर्म और कर्म-फल जानने वाला बहिरात्मा ।

अप्रत्याख्यान—देशसंयम ; रागात्मक या कषायात्मक विषयो का अप्रतिबन्ध या आंशिक त्याग ।

अप्रदेश—एक प्रदेशी परमाणु ।

अप्रमत्त-संयम—सातवा गुणस्थान, साधक की प्रमाद-रहित भूमिका।

अप्रमाद्—आत्म-जागरूकता।

अप्रशस्त-ध्यान—अशुभ-ध्यान।

अप्रशस्त-निदान—पर भव के लिए अशुभ संकल्प।

अप्रामाण्य—यथार्थता का अभाव।

अप्राप्यकारी—चक्षु और मन से प्राप्त होने वाला ज्ञान।

अबन्ध—बन्धन-मुक्त अयोगी जिन।

अभक्ष्य—धर्माराधना एवं स्वास्थ्य में बाधक अखाद्य आहार।

अभयदान—प्राणिमात्र के लिए जीवनदान।

अभव्य—ससार-मुक्ति के लिए अयोग्य जीव।

अभाव—एक वस्तु में दूसरे वस्तु की अविद्यमानता।

अभिग्रह—साधुओं का आचार-विशेष, प्रत्याख्यान का एक अग, प्रतिज्ञा।

अभिज्ञा—प्रत्यभिज्ञान, उपस्थित वस्तु-विशेष से सम्बद्ध पूर्व स्मृति का साक्षात्कार।

अभिधान—१ व्याख्या-योग्य सूत्र २. बोधमूलक सूत्र।

अभिधेय—प्रतिपाद्य-विषय।

अभिनिबोध—इन्द्रिय और मन से विषय बोध ; मतिज्ञान का दूसरा नाम।

अभिनिवेश—अहंकारमूलक क्रिया।

अभिमान—मान-कषाय के उदय से होने वाला अहं-भाव।

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग—स्वतत्त्वज्ञान में सतत तत्परता।

अभूतार्थ—असत्यार्थ विषय की अविद्यमानता।

अभेद—द्रव्य और गुण का साम्य।

अभेदोपचार—एकत्व का आरोपण।

अभ्यन्तर-इन्द्रिय—मन।

अभ्यन्तर-ग्रन्थ—कषाय भाव।

अभ्यन्तर-तप—मन को नियन्त्रित करने वाली तपस्यामूलक साधना।

अभ्याख्यान—दोषारोपण, दोष न होते हुए भी दोष कहना।

अमनस्क—असज्ञी ; मन-रहित जीव।

अमनोज्ञ—अप्रिय-अरुचिकर वस्तु।

अमूढ़ दृष्टि—तत्वों के प्रति अभ्रान्त-दृष्टि।

अमूर्त—इन्द्रियों से अग्राह्य द्रव्य।

अयन—१. छह माह का एक काल प्रमाण २. सूर्यगति।

अयोग-केवली—चौदहवाँ गुणस्थान ; साधक की आखिरी

भूमिका ; मन, वचन और काया की सारी चेष्टाओं से मुक्त शैलेशी अवस्था ।

अयोग-व्यवच्छेद—विशेष्य और विशेषण की एकरूपता ।

अरति—प्रीति का अभाव , इन्द्रिय-विषयों के प्रति उदासीनता ।

अरतिरति—विषयों के प्रति मन का अनुराग ।

अरिहन्त—प्रथम परमेष्ठी , वीतराग, सर्वज्ञ ; कर्म-शत्रुओं के संहर्ता ; आत्म-विजेता ।

अर्थ—१. प्रयोजन २. ध्येय, ३. पदार्थ ४. ज्ञान के विषय द्रव्य, गुण, पर्याय ५. पुरुषार्थ, ६. धन, ७ फल ।

अर्थदण्ड—प्रयोजन-वश की जाने वाली हिंसा ।

अर्थनय—अर्थ और व्यञ्जन की वर्तमान पर्याय का ग्राहक ।

अर्थापत्ति—दृष्ट या कथित से तत्सम्बन्धित अदृष्ट या अकथित का बोध होना ।

अर्थावग्रह—अप्राप्त अर्थ का ग्रहण ।

अर्हत्—पूज्य । देखें—अरिहन्त ।

अलाभ-परीषह—लाभ न होने पर भी सन्तुष्ट रहना ।

अलोकाकाश—लोक के बाहर स्थित मात्र अपरिमित आकाश ।

अल्प बहुत्व—एक-दूसरे की अपेक्षा न्यूनाधिकता का बोध , संकोच-विस्तार ।

अवक्तव्य—सप्तभंगी का चौथा भंग ; अभिव्यक्ति में अशक्य पदार्थ।

अवगाहन—स्थान ; द्रव्यों का आश्रय-दाता।

अवगाहना—१. आधारभूत आकाश क्षेत्र २. आत्म-प्रदेश में व्याप्त उत्कृष्ट और न्यून स्थिति।

अवग्रह—इन्द्रियों द्वारा सामान्य का ग्रहण या सामान्य ज्ञान की उत्पत्ति से पूर्व की अवस्था।

अवधिज्ञान—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा के अन्तर्गत कुछ द्रव्यों तथा उनके कुछ सूक्ष्म भावों को प्रत्यक्ष करने वाला ज्ञान विशेष।

अवमौदर्य—न्यून आहार-विषयक अभिग्रह ; आहार की अपेक्षा से घटौती ; भूख से कम खाना ऊनोदरी।

अवसर्पिणी—ह्रासमूलक कालचक्र का एक भाग ; काल-मर्यादा—दस कोटाकोटि सागरोपम।

अवाय—भाषा या गुण आदि से व्यक्ति या वस्तु का बोध।

अविनाभाव—साध्य की सिद्धि का अचूक साधन।

अविरत-सम्यग्दृष्टि—चौथा गुणस्थान, जिनशासन के प्रति श्रद्धा।

अविरति—[illegible] से अलगाव का अभाव।

आत्मा—व्यक्ति का निजत्व और अमूर्त अन्तस् तत्त्व, विशुद्ध जीव द्रव्य।

आदान-निक्षेपण-समिति—वस्तुओं को उठाने-रखने में विवेक/यतनाचार।

आदेय—कान्तियुक्त शरीर का कारण।

आधाकर्म—साधु के लिए बनाया गया आहार; देखें—अधःकर्म।

आन-पान—प्राण का एक अंग; श्वासोच्छ्वास।

आनुपूर्वी—१ सर्वज्ञ कथित वचन का तदनुसार प्ररूपण, २. विशिष्ट प्रदेश और आकार के कारण इच्छानुसार गमन क्रिया, ३ तीर्थंकर क्रम या पंचपरमेष्ठी की पूर्वापर गणनात्मक क्रम-योजना।

आप्त—सर्वज्ञ।

आबाधा—कर्म-बन्ध के उदय और क्षय का मध्यवर्ती समय।

आभिनिबोधक—देखें—अभिनिबोध।

आम्नाय—१. स्वाध्याय २. परम्परा।

आयतन—सम्यग्दर्शन आदि गुणों का आधार।

आयंबिल—देखें—आचाम्ल।

आयु—गति-विशेष, कर्म विशेष।

आयुकर्म—जीवन-परिणाम का आधार ; आत्मा को शरीर में रोके रखने वाला कर्म ।

आरम्भ—हिंसक-प्रवृत्ति ।

आरम्भ-समारम्भ—जीव-विराधना ।

आराधना—१. अर्हद्-भक्ति, २. आत्म-रमण ।

आरोह—शरीर की ऊँचाई ।

आर्जव—सरल सद्व्यवहार ।

आर्त्तध्यान—इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग से होने वाली खेदयुक्त मनःस्थिति ।

आर्या—१. प्रबुद्ध महिला, २. साध्वी ।

आर्यिका—प्रव्रजित साध्वी , अज्जिका ।

आलोचना—अपने दोषों का विनम्र प्रकटीकरण ।

आवरण—अज्ञान आदि दोषों का कारणभूत कर्म ।

आवर्तन—हिंसादि प्रवृत्तियों से हटकर सामायिक आदि में प्रवृत्ति ।

आवली—क्षेत्र या समय का मापक आधार , असंख्य समयों का समूह ।

आवश्यक—नित्य करणीय प्रतिक्रमण आदि कर्तव्य ।

आशातना—मर्यादा के विपरीत वर्तन ।

आसन—ध्यान तथा तप आदि के लिए बैठने तथा खडे होने का स्थान या विधि।

आसादन—सम्यग्दर्शन की विराधना।

आस्रव—मन, वचन, शरीर की प्रवृत्ति के कारण शुभाशुभ कर्मों का आगमन।

आस्रव-अनुप्रेक्षा—मानसिक तथा शारीरिक मोहजन्य प्रवृत्तियो की हेयता का चिन्तन।

आहरण—अप्रतीत अर्थ की प्रतीति ; पुद्गल-पिण्ड ग्रहण करने की क्रिया।

आहार—१ पौद्गलिक शरीर, २. भोजन।

आहारक-वर्गणा—आहारक शरीर रूप परिणमित पुद्गल-स्कन्ध।

आहारक शरीर—चौदह पूर्वी या केवल-ज्ञानी के पास जाने के लिए बनायी जाने वाली शरीर-रचना।

आहारक-समुद्घात—आहारक शरीर की रचना के लिए आत्म-प्रदेशो का वहिर्गमन।

आहार-पर्याप्ति—भुक्त आहार को मल ओर रस के रूप में वदलने की शक्ति।

आहार-संज्ञा—आहार की अभिलाषा।

ई

ईर्या—गमन।

ईर्यापथकर्म—कर्म आगमन का द्वार।

ईर्यापथ क्रिया—केवल शारीरिक चेष्टा; ईर्यापथकर्म की कारणभूत क्रिया।

ईर्या-समिति—विवेकपूर्वक गमनागमन क्रिया।

ईश्वर—ऐश्वर्यशाली; परमात्मा; कैवल्य-विभूति।

ईषत्प्राग्भार—सिद्धक्षेत्र।

ईहा—मतिज्ञान का एक भेद, अवग्रह से जाने गये पदार्थ के विशेष जानने की इच्छा।



उ

उच्चार प्रस्रवण समिति—प्रतिष्ठापना-समिति के नाम से सम्बोधित ; मल विसर्जन में विवेक।

उच्छ्वास—१. असंख्यात आवली के बराबर का काल, २. सांस लेना।

उञ्छ—अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा लिया जाने वाला आहार।

उत्तर प्रकृति—कर्मों के अवान्तर भेद।

उत्पाद—द्रव्य की नित्य नई पर्यायों का प्रादुर्भाव।

उत्सर्ग—सामान्य रूप से निर्धारित निर्दोष मार्ग।

उत्सर्ग-समिति—देखें—उच्चार प्रस्रवण समिति।

उत्सर्पिणी—प्रगतिमूलक कालचक्र का एक भाग, काल मर्यादा-दस कोटाकोटि सागरोपम।

उत्सूत्र—सिद्धान्त के बहिर्भूत कथन।

उत्सेधांगुल—आठ जूं के विस्तार का एक क्षेत्र प्रमाण।

उदय—कर्म-परिणाम।

उदीरणा—नियत समय न आने पर भी तप आदि के द्वारा होने वाला कर्म-क्षय।

उदुम्बर—जीव बहुल फल विशेष ; ऊमर, बड, पीपल, गूलर तथा पाकर—पाँच अग्राह्य फल ।

उद्गम-दोष—सदोष-भिक्षा, अपने लिए बनाये हुए भोजन की भिक्षा ग्रहण करना ।

उद्भिज्ज—भूमि फोडकर निकलने वाले सम्मूर्च्छिम जीव ।

उद्वर्तन—नैरयिक और भवन वासी देवों का मरण ।

उद्दिष्ट—अपने उद्देश्य से बनाया गया आहार या भिक्षा लेना ।

उद्दिष्ट त्याग-प्रतिमा—व्यक्ति-विशेष के लिए उद्देश्यपूर्वक बनाये गये आहार का त्याग ।

उपकरण—१. बाह्य इन्द्रिय विशेष साधन, २. साधक की साधन-सामग्री ; जैसे—संयम-उपकरण, ज्ञान-उपकरण, तप-उपकरण ।

उपगूहन—सम्यग्दर्शन का एक अंग, अपने गुण तथा दूसरो के दोष व्यक्त न करना ।

उपघात—प्रशस्त ज्ञान में दोषारोपण ।

उपधान—तपश्चर्या-विशेष ।

उपधि—१. ज्ञान एवं सयम की आराधना में सहायक उपकरण, २. कषाय की उत्पत्ति के कारणभूत बाह्य पदार्थ ।

उपनय—हेतु का उपसंहार ।

उपपाद—१ अन्य गति में जन्म, २ देव और नारकीय का जन्म-स्थान।

उपभोग-परिभोग-व्रत—पुनः पुनः भोग में आने वाली पाप बहुल वस्तुओं का सर्वथा त्याग और अल्प पाप वाली वस्तुओं की परिमितता।

उपमान—किसी प्रसिद्ध उपमा विशेष से साध्य की सिद्धि।

उपयोग—चैतन्य प्रवृत्ति, आत्मा का ज्ञान दर्शन युक्त परिणाम; विषय को ग्रहण करने का व्यापार।

उपयोग-शुद्धि—जीवों की रक्षा में चित्त की जागरूकता।

उपयोगेन्द्रिय—विषयभूत पदार्थ को जानने के लिए होने वाला ज्ञान-व्यापार।

उपवास—आत्म-सामीप्य, कषाय-निरोध एवं खाद्य-पेय पदार्थों का त्याग।

उपबृंहण—सम्यक् चिन्तन पूर्वक धर्म की अभिवृद्धि।

उपशम—१ कारणवश कर्मफल देने की शक्ति का प्रगट न होना, २. इन्द्रिय-निग्रह, ३. क्षमाभाव।

उपशमक—कषायों का उपशमन करने वाला साधक।

उपशमक श्रेणी—चारित्र मोहनीय का उपशमन करते हुए आरोहण करना।

उपशम-सम्यक्त्व—दर्शन-मोहनीय के उपशम से उत्पन्न होने वाली तत्त्व-श्रद्धा ।

उपशान्त-कषाय—ग्यारहवा गुण-स्थान, मोहकर्म एवं कषायो का पूर्ण उपशमन ।

उपशान्त-मोह—उपशान्त-कषाय का दूसरा नाम ।

उपसम्पदा—१. गुरु के प्रति आत्म-निष्ठा, २. ज्ञान एव चारित्र की विशेष उपलब्धि के लिए अन्य परम्परा का स्वीकृतिकरण ।

उपसर्ग—उपद्रव ; पूर्व वैरवशात् किये जाने वाले व्यवधान ।

उपस्थापन—निर्विकल्प स्थिति मे प्रत्यावर्तन ।

उपादान—कार्य में अपनी विशेषताओं का समर्पण ; कारण ।

उपाधि—वस्तु का गुण ।

उपाध्याय—चतुर्थ परमेष्ठी, आगमविद मुनि, स्वयं ज्ञान-ध्यान में रत एवं संघ-सदस्यो का आगम-प्रशिक्षक ।

उपासक—उत्कृष्ट श्रावक ।

उष्ण परीषह—समत्व योग की अस्मिता की रक्षा के लिए आतापना सहन करना ।

ऊ

ऊन—न्यून।

ऊनोदरी—देखें—अवमौदर्य।

ऊर्ध्वलोक—पुरुषाकार लोक का सबसे ऊपर का भाग; मृदंग के समान लोक।

ऊहा—ईहा का दूसरा नाम।



ऋ

ऋजुगति—बाण की तरह सीधी-सरल गति।

ऋजुप्राज्ञ—सरल और समझदार।

ऋजुमति—मनः पर्याय ज्ञान का एक अंग, दूसरे के मनोगत भावो का सरलता से ज्ञान।

ऋजुसूत्र नय—वर्तमान का ग्राही, भूत भविष्य का ग्रहण न कर केवल वर्तमान पर्याय/परिवेश को ही पूर्ण द्रव्य स्वीकार करने वाला दृष्टिकोण।

ऋतु-संवत्सर—काल-प्रमाण, पूरे तीन सौ साठ दिन का वर्ष।

ऋद्धि—चमत्कारी शक्तियाँ।

ऋद्धिगारव—ऋद्धि का गौरव।

ऋषभ-नाराच—कीलिका रहित संहनन।

ऋषि—ऋद्धि-सिद्धि सम्पन्न साधु।



ए

एकत्व-अनुप्रेक्षा—स्व-कर्तृत्व एव स्व-भोक्तृत्व। कर्मों के उपार्जन एवं उपभोग में स्वय की सलग्नता एवं अन्य सर्व जीवो की असहायता का चिन्तवन।

एकभक्त—साधु का मूल गुण, एक बार शुद्ध भोजन।

एकल-विहारी—अकेला विचरण करने वाला मुनि। तप, ज्ञान, आचार और आगम-कुशल विशिष्ट साधु का एकाकी विहारी।

एकान्त—एक धर्मात्मक वस्तु का ग्रहण, वह सम्यक् भी हो सकता है और मिथ्या भी।

एकासन—दिन में एक बार भोजन करना।

एकेन्द्रिय—केवल स्पर्शन-धारी जीव—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि व वनस्पति आदि।

एवकार—साध्य की स्वीकृति, 'यह ही है'—ऐसा ही है।

एवम्भूत नय—जो वस्तु जैसी है, उसे उस रूप में कहना। व्युत्पत्तिपरक शब्दार्थ के तद्रूप क्रिया का सामंजस्य। जैसे गो शब्द से गमन करती हुई गाय का ग्रहण, न कि बैठी हुई का।

एषणा-समिति—आहार-चर्या विषयक विवेक।

ऐ

ऐलक—ग्यारह प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक की भूमिका, क्षुल्लक से ऊपर की अवस्था।



ओ

ओघ—सामान्य श्रुत का कथन।

ओज—शरीर की शक्ति-विशेष।



औ

औत्पत्तिकी बुद्धि—प्रकृष्ट बुद्धि । हाजिर जवाब ।

औदयिक भाव—कर्म के उदय से उत्पन्न भाव ।

औदारिक—मनुष्य और पशुओ का स्थूल शरीर ।

औद्देशिक—देखें–उद्दिष्ट ।

औपपातिक—तात्कालिक उत्पन्न , देव नारक आदि के शरीर ।

औपशमिक-चारित्र—समस्त मोहनीय के उदय से उत्पन्न होने वाला चारित्र ।

औपशमिक सम्यक्त्व—मिथ्यात्व आदि के उपशम से प्रकट होने वाला सम्यक्त्व ।



क

करण—जीव के शुभ-अशुभ परिणाम।

करणानुयोग—लोक-अलोक के विभाग, युगों के बदलाव तथा चतुर्गति के स्वरूप को दरशाने वाला ज्ञान विशेष।

करुणा—उदार-भाव।

कर्त्ता—शुभ-अशुभ कार्य करने वाला जीव।

कर्म—१ मन, वचन, शरीर की शुभ या अशुभ प्रवृत्ति, २ आत्मा को आबद्ध करने वाला पुद्गल-परिणाम।

कर्मचेतना—अन्य स्वभाव में परिणति।

कर्मभूमि—भरत आदि कर्म-प्रधान क्षेत्र।

कर्मयोग—आत्म-प्रदेशों का परिस्पन्दन।

कर्म-वर्गणा—कर्म रूप में परिणमन करने वाला पुद्गल-समूह।

कर्म-संवत्सर—लौकिक वर्ष, तीन-सौ-साठ रात-दिन के बराबर का काल।

कर्म-स्थिति—कर्म-पुद्‌गलो का अवस्थान-समय ।

कर्ष—समय सोलह मासा । एक तौल ।

कलल—गर्भ की प्रारम्भिक सात दिनो की दशा ; जमा हुआ शुक्र और रक्त ।

कल्प—१. साधुचर्या की शास्त्रोक्त विधि, २. देवो के स्थान ।

कल्प-काल—वीस कोटाकोटि सागर के बराबर का काल ।

कल्प-भूमि—तीर्थंकर की सभा-परिषद/समवसरण की भूमि ।

कल्प-वृक्ष—मन-वाछित फलदायक वृक्ष विशेष ।

कल्पातीत—उत्तम जाति के देव विशेष—ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानवासी देव ।

कल्पाकल्प—समयानुसार करणीय-अकरणीय कार्यों का प्ररूपण या प्ररूपण करने वाला शास्त्र ।

कल्पोपपन्न—उत्तम जाति में उत्पन्न देव ।

कल्याणक—तीर्थंकर के जीवन के प्रमुख घटनाक्रम—गर्भ/च्यवन, जन्म, दीक्षा, कैवल्य, मोक्ष ।

कवक—सीग में उत्पन्न होने वाली जटाकार वनस्पति ।

कवल—ग्रास ; एक हजार चावलो का एक कौर ।

कषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी आत्म-घातक कलुष-विकार ।

कषाय-समुद्घात—कषाय की तीव्रता से जीव प्रदेशों का शरीर से तिगुना फैलाव।

कषाय-संल्लेखना—कषायो की कृशता; परिणामों की विशुद्धि।

कापोत-लेश्या—तीसरी लेश्या, भावो की कलुषता।

काम—१. पुरुषार्थ, २ अभिलाषा, ३. दुष्ट-अभिप्राय, ४ इन्द्रियो के विषय।

काम-कथा—विषयासक्ति जागृत करने वाली चर्चा।

काय—अनेक प्रदेशो का समूह, जीव के स्थावर एवं त्रस जाति के शरीर, औदारिक आदि शरीर।

कायक्लेश—तप-विशेष, ग्रीष्म, शीतकालीन, दुःसह शारीरिक उपसर्ग।

काय-गुप्ति—शारीरिक प्रवृत्तियो का निरोध।

कायोत्सर्ग—आभ्यन्तर-तप; अहकार एवं ममकार रूप संकल्प का त्याग। निर्धारित समय के लिए शरीर को काष्ठवत् समझ निजगुण/जिनगुण स्मरणपूर्वक शरीर से ममत्व का त्याग, व्युत्सर्ग नामक तप।

कारक—क्रिया से युक्त द्रव्य।

कारक-सम्यक्त्व—शास्त्रोक्त अनुष्ठान को तदनुसार करना।

कारण—निमित्त-साधन ।

कार्मण—जीव-प्रदेशो से सम्बद्ध आठ प्रकार के कर्म-पुद्गल ।

कार्मण-वर्गणा—ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों का समुच्चय ।

कार्मण-शरीर—कर्म-पुद्गलो का ही वना हुआ एक अत्यन्त सूक्ष्म शरीर ।

काल—द्रव्य-परिणमन में सहायक हेतु ।

काल-कल्प—समय सम्बन्धित शास्त्रोक्त विधान ।

कालकूट—उत्कृष्ट विष-विशेष ।

काल-चक्र—वीस कोटाकोटि सागरोपम परिमित समय । विश्व के ह्रास एवं विकास का आधार ।

कालधर्म—मृत्यु ।

काल-पुरुष—पुरुष-चिह्न का अनुभव ।

काल-युति—जीव आदि द्रव्यो के दिन, माह और वर्ष आदि का काल के साथ मिलाप ।

कालरात्रि—प्रलय-समय ।

काल-लब्धि—विशिष्ट कर्म-स्थिति ।

काललोक—समय, आवली आदि काल ।

कालाणु—समय का घटक ; बन्धनमुक्त प्रदेश संयोग ।

कालुष्य—कषायों से चित्त की क्षुब्धता ।

किल्विष—पाप , अन्त्यजों के समान हीन देव ।

काष्ठ-संस्तर— साधु के सोने के लिए लकडी का पाटा ।

कीलिका-संहनन—शरीर सहनन विशेष , हड्डियो के बीच मात्र कील का होना ।

कुक्षि—अडतालीस अगुल का एक क्षेत्र प्रमाण ।

कुगुरु—कुशास्त्र प्रशसक, दूषित गुरु ।

कुडव—बारह अजुलि , एक सेर ।

कुतीर्थ—दूषित दर्शन, दूषित मत का अनुयायी ।

कुदर्शन—मिथ्या सिद्धान्त ।

कुदृष्टि—दूषित दृष्टि ।

कुदेव—मिथ्यात्व के प्रवर्तक ।

कुधर्म—मिथ्यामत का पोषण ।

कुशास्त्र—असर्वज्ञ प्रणीत सिद्धान्त ।

कुम्भक—प्राण-वायु/श्वास को नाभि कमल में रोकना ।

कुल—१ जातिभेद ; जीवो की १९९½ लाख करोड जातिया ; २ शिष्य समुदाय ।

कुलकर—आदि युग के प्रारम्भ में नीति आदि का प्रवर्तक महापुरुष ।

कुशील—१ अब्रह्मचर्य, २ अनाचार पूर्वक जीवन-यापन ।

कुश्रुत—मिथ्यात्व पोषक ग्रन्थ।

कुश्रुतज्ञान—मिथ्यादर्शन के उदय से सहचरित श्रुतज्ञान।

कूट—१. माया-प्रपंच, २. पिंजरा, मारक यन्त्र, ३. पर्वतमाला के उपशिखर।

कूटग्राह्य—धोखे से जीवों को पकड़ना।

कूटलेख—तद्रूप बनावटी हस्ताक्षर।

कूटशाल्मली—नरकों के अत्यन्त पीड़ादायक कंटीले वृक्ष।

कृतकृत्य—कर्मों से मुक्त।

कृतिकर्म—विधिपूर्वक वन्दन।

कृष्ण-लेश्या—तीन अशुभ लेश्याओं में से प्रथम; जीव की निकृष्ट मनःस्थिति।

केवलज्ञान—इन्द्रिय और मन से निरपेक्ष सर्वग्राही आत्मज्ञान।

केवलज्ञानी—सर्वज्ञ।

केवलदर्शन—केवलज्ञान के समान सर्वग्राही दर्शन।

केवललब्धि—अर्हत् या सिद्धि के केवलज्ञान तुल्य नव लब्धियाँ—अनन्त-ज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्त-सम्यक्त्व, अनन्त-सुख, अनन्त-दान, अनन्त-लाभ, अनन्त-भोग, अनन्त-उपभोग तथा अनन्त-वीर्य।

केवलवीर्य—जानने-देखने की अनन्त शक्ति।

केवलसुख—इन्द्रिय और मन से निरपेक्ष निराकुल आनन्द।

केवली—केवलज्ञान आदि गुणो के धनी अर्हत् भगवान।

केवलीमरण—निर्वाण।

केवली समुद्घात--केवली भगवान् द्वारा अपने आत्म-प्रदेशों का शरीर से वहिर्विस्तार।

केश लुंचन—साधु का एक मूल गुण; सहिष्णुता की कसौटी वढाने के लिए वालों का लोच, केशोत्पाटन।

क्रिया—१ शास्त्रोक्त विधि-अनुष्ठान, २ वाह्य और आभ्यन्तर परिस्पन्दन, हलन चलन रूप प्रवृत्तियुक्त द्रव्य की अवस्था।

क्रियाकाण्ड—नैमित्तिक विधि-विधान।

क्रीतदोष—भिक्षा-दोष, साधु के निमित्त खरीदा गया भोजन आदि।

क्रोध—क्रूर परिणाम, अपेक्षा की उपेक्षा।

क्लेश—शारीरिक और मानसिक व्यथा।

क्षण—स्तोक, एक परमाणु का दूसरे परमाणु में अतिक्रमण करने का समय।

क्षपक—कषायों का क्षपण कर चारित्र-मोहनीय कर्म का क्षय करने वाला साधक।

क्षपकश्रेणी—मोहनीय आदि कर्मों की विनाश की पद्धति ।

क्षपण—तपश्चर्या विशेष । ध्यान आदि के द्वारा कषायो की समूल समाप्ति ।

क्षमा—धर्म का पहला अंग ; क्रोध-कालुष्य का अन्त ।

क्षमापण—कृत, कारित और अनुमोदित अपराधो की गुरुजनो एवं साधर्मी बन्धुओ से क्षमा-प्रार्थना ।

क्षमापन-पर्व—सावत्सरिक पर्व , मैत्री दिवस ।

क्षमाश्रमण—प्रबुद्ध एवं उपशान्त मुनि की उपाधि-विशेष ।

क्षय—कर्मों की आत्यन्तिक निवृत्ति ।

क्षयोपशम—कर्मों के कुछ अंश का विनाश और कुछ अंश का दमन ।

क्षयोपशम-सम्यक्त्व—मिथ्यात्व सम्बन्धी कर्मों के विनाश एवं दमन से उत्पन्न होने वाला तत्त्वार्थ श्रद्धान ।

क्षान्ति—क्षमा ; क्रोध का अभाव ।

क्षायिक—शुद्ध आत्म-परिणाम ; कर्म विनाश से उत्पन्न होने वाला भाव ।

क्षायिक उपभोग—उपभोगान्तराय कर्म के क्षय से उपलब्ध यथेष्ट उपभोग-सामग्री ।

क्षायिक चारित्र—यथाख्यात चारित्र, चारित्र मोहनीय कर्म के सम्पूर्ण क्षय से उत्पन्न होने वाला चारित्र।

क्षायिक ज्ञान—केवलज्ञान।

क्षायिक दान—दान देते समय बाधा की उपस्थिति।

क्षायिक-सम्यक्त्व—अनन्तानुबन्धी चार कषाय, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग् मिथ्यात्व—इन सात प्रकृतियों के आत्यन्तिक विनाश से प्रादुर्भूत विशुद्ध सम्यक्त्व।

क्षायोपशमिक-चारित्र—कषायों के विनाश एवं दमन से आत्मा में विषयों से निर्वृत्ति का परिणाम।

क्षायोपशमिक-सम्यक्त्व—अनन्तानुबन्धी चार कषाय, मिथ्यात्व और सम्यग् मिथ्यात्व—इन छह प्रकृतियों के उदय, क्षय और दमन से प्रादुर्भूत तत्त्व-श्रद्धान।

क्षीण-कषाय—बारहवाँ गुण-स्थान, कषायों की समूल समाप्ति, वीतराग स्थिति।

क्षीण-मोह—क्षीण-कषाय का दूसरा नाम, मोह का समूल नाश।

क्षुधा-परीषह—भूख की पीडा को शान्ति से सहन करना।

क्षुल्लक—ग्यारह प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक की एक भूमिका। ऐलक से नीचे की अवस्था।

क्षेत्र—जीव एवं पुद्गलों का आवास।

क्षेत्रकल्प—क्षेत्र सम्बन्धी अनुष्ठान।

क्षेत्रज्ञ—छह द्रव्य स्वरूप लोक क्षेत्र का ज्ञाता।

क्षेत्रपाल—क्षेत्र-रक्षक देव विशेष।

क्षोभ—चारित्र-मोह; निर्विकार और निश्चल चित्त की एकाग्रता का विनाशक।



ख

खरकर्म—निष्ठुर व्यवसाय। जीवो को पीडा पहुँचाने वाला व्यापार।

खाद्य—स्वास्थ्य-लाभकारक शाकाहारी भोजन-सामग्री।

खेचर—विद्याधर, विद्या के बल से आकाश में विचरण करने वाले मनुष्य की एक जाति विशेष।

खेद—अठारह दोषगत एक दोष, अनिष्ट के सयोग से चित्त में होने वाला शोक।



ग

गच्छ—१. तीन से अधिक पुरुषो या साधुओ का समूह, २. आचार्य का शिष्य परिवार, ३. धार्मिक समाज की व्यवस्था की परम्परा विशेष।

गण—तीन साधुओ का समुदाय ; समान आचार-विचार वाले साधुओ का परिवार। देखें—गच्छ।

गणधर—तीर्थंकर के साधु-समुदाय के नायक ; अर्हत उपदिष्ट ज्ञान को शब्द-बद्ध करने वाले प्रमुख ज्ञानी।

गणावच्छेदक—प्रचार, उपाधि, लाभ आदि के लिए गण से अलग होकर विचरण करने वाला साधु।

गणि/गणी—गच्छनायक ; आगम-अंग-ज्ञाता ; गणधर, आचार्य।

गणिनी—साध्वी समुदाय की प्रधान।

गति—जीव की अवस्था विशेष। भव से भवान्तर की प्राप्ति। सख्या ४—मनुष्य, देव, नारक, तीर्यंच।

गन्धर्व विवाह—प्रेम विवाह, युवक-युवती द्वारा इच्छानुसार परिणय।

गरिमा ऋद्धि—वज्र से भी दृढ शरीर बनाने की शक्ति।

गर्भ—उत्पत्ति स्थान।

गर्भज—गर्भ से उत्पन्न होने वाला प्राणी।

गर्हा—कृत, कारित, अनुमोदित अपराधो की गुरु के समक्ष आलोचना।

गालना—पानी छानने का कपडा, गलना।

गव्यूति—दो हजार धनुष के बराबर का माप, एक कोश।

गारव—ऋद्धि, रस और सुख-सामग्री में आसक्ति।

गुण—द्रव्य के समस्त प्रदेशों और उसकी समस्त पर्यायों में व्याप्त धर्म।

गुण-प्रत्यय-अवधिज्ञान—सम्यक्त्व अधिष्ठित साधना से उत्पन्न अवधिज्ञान।

गुणव्रत—श्रावक के पालने योग्य व्रत विशेष, पाँच अणुव्रतो में वृद्धि करने वाले दिक्, देश और अनर्थदण्ड नामक तीन व्रत।

गुण श्रेणी—परिणामो की विशुद्धि से कर्म-प्रदेशों की निर्जरा की रचना।

गुणस्थान—साधक के उत्तरोत्तर आत्म-विकास की चौदह भूमिकाएँ।

गुप्ति—मन, वचन, काया की अशुभ प्रवृत्तियो का गोपन।

गुरु—१ बालक के उत्तरोत्तर विकास का मार्ग दर्शक,

२ रत्नत्रय की भूमिका आरोहक एवं सामान्य जन विशेष का धर्मोपदेशक।

गुरुगति—अभेद्य पदार्थों में प्रवेश करने की गति।

गुरुमूढ़ता—सदाचार के विपरीत आचरण करने वाले गुरु के प्रति निष्ठा।

गृहकर्म—१. जिन मन्दिर में मूर्तियो की रचना, २. गार्हस्थ्य-मूलक क्रिया।

गृहस्थ-धर्म—श्रावक-धर्म। गृहस्थ द्वारा आचरित नित्य और नैमित्तिक देव-पूजा, गुरु-उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान आदि धार्मिक कृत्य।

गृहीत मिथ्यात्व—उपदेश सुनने पर भी तत्त्वार्थ में अरुचि रहना।

गोचरी—भिक्षाचर्या, जंगल में घास चरने वाली गाय की तरह निष्काम वृत्ति से आहार ग्रहण करना, मधुकरी।

गोत्र—कर्म विशेष। उच्च या नीच जाति विशेष। कुल विशेष।

गौरव—गुणों के ज्ञान से उत्पन्न महानता।

ग्रन्थि—राग-द्वेष का प्रगाढ़ भाव; परिग्रह विशेष।

ग्रास—एक हजार चावल का एक कौर।

ग्लान—असमर्थ। व्याधि से पराभूत।

घ

घन—किमी राशि की तीन बार परस्पर गुणा।

घनोद्धि—पत्थर के समान कठोर जल समूह।

घातीकर्म—जीव के ज्ञान, दर्शन आदि अनुजीवी गुणो का विघात करने वाले ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय तथा अन्तराय नामक कर्म।

घ्राणेन्द्रिय—नाक, दुर्गन्ध-सुगन्ध का ग्राहक।



च

चक्रमण—पर्यटन, परिभ्रमण ।

चक्रवर्ती—षट् खण्ड का अधिपति और बत्तीस हजार राजाओं का स्वामी, सम्राट ।

चक्षुरिन्द्रिय—आँख, वर्ण्य विषय का ग्राहक ।

चक्षुदर्शनावरण—चक्षु में ग्राह्य सामान्य विषय-वस्तु के ज्ञान का अवरोधक।

चतुरिन्द्रिय—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु—चार इन्द्रियो के धारी जीव ।

चतुर्थभक्त—एक दिन का उपवास ।

चतुर्विंशति स्तव—चौबीस तीर्थंकरो का गुणगान ।

चन्दोबा—मन्दिर या उपाश्रय आदि में छत पर बाधा जाने वाला चौकोर वस्त्र ।

चन्द्र संवत्सर—बारह पूर्णिमाओ का परिवर्तन काल ।

चयन—देवो का अपनी सम्पत्ति से वियोग ।

चरणानुयोग—संयम के मूल गुणों और उत्तर गुणो का विधान।

चरमशरीरी—तद्भव मोक्षगामी, अन्तिम शरीरधारी।

चर्या—१. आचरण, २ अनुष्ठान, ३. विहार, ४. आवश्यक क्रियाओं का पालन।

चर्या-परीषह—गमनागमन की वेदना से व्यथित न होना।

चातुर्मास—चौमासा, वर्षावास।

चारण—आकाश-मार्ग से गमन करने की ऋद्धि विशेष, शक्ति-विशेष अथवा उससे सम्पन्न साधु।

चारित्र—आत्म-विशुद्धि का प्रयास, शुभ कर्म में प्रवृत्ति और अशुभ कर्म से निवृत्ति।

चारित्र मोहनीय—संयम-शुद्धि का अवरोधक।

चारित्र-संक्लेश—आत्मा का अविशुद्ध परिणाम धारा से चारित्र का पतन।

चित्—स्वरूप का अनुभव, चैतन्य-शक्ति।

चित्त—१ आत्मा का चैतन्य परिणाम, २. भूत, भविष्य और वर्तमान काल का सामान्यतः साक्षात्कार।

चिन्ता—१. विविध प्रकार के पदार्थों का चिन्तन करने वाला

ज्ञान, २. अन्तःकरण की वृत्ति को कलुषित करने वाली मानसिक क्रिया।

चूर्णिका—आगमों की व्याख्या-परक टीका।

चूलिका—१. अर्थ की विशेष प्ररूपणा, २ ग्रन्थ का परिशिष्ट।

चेतना—आत्मा का व्यक्तित्व; जीव की कर्तृत्व-भोक्तृत्व मूलक-शक्ति।

चैत्य—जिन-मन्दिर।

चैत्यवृक्ष—१. देवों के चिह्नभूत वृक्ष, २. वह वृक्ष जिसकी छाँह में तीर्थंकर को कैवल्य-लाभ होता है।

च्यवन—जन्मान्तर-प्राप्ति। एक जन्म से दूसरे जन्म में अवतार।

च्यावित शरीर—आत्महत्या से छूटने वाला शरीर।

च्युत शरीर—आयु पूर्ण होने पर स्वयमेव छूटने वाला शरीर।



छ

छद्म—आत्म-स्वरूप के आच्छादक ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि कर्म।

छद्मस्थ—चार गतियो में भ्रमण करने वाला जीव, अल्पज्ञ, संसारस्थ जीव, सकषाय सावरण जीव।

छन्दना—भोजन के लिए साधु द्वारा अन्य संघस्थ साधु को निमन्त्रण।

छल—बत्तीस सूत्र दोषो में से पाँचवा, वचन-युद्ध।

छेद—१. प्रायश्चित विशेष, २. शुद्धि परीक्षण का एक अवयव, ३ निर्दोष आचरण, ४ विभाग, ५ अभाव।

छेदन—कर्मों की स्थिति का विघात करना।

छेदगति—शब्द पुद्गलों की गति।

छेदोपस्थापना—निर्विकल्पता का सद्भाव।

छेदोपस्थापना-चारित्र—दोष-निवारण के लिए प्रतीकार।



ज

जगत्—चेतन और अचेतन छह द्रव्यो का समुदाय।

जगश्रेणि—प्रदेशों की सात रज्जू जितनी सीधी पंक्ति।

जघन्य—१. निकृष्ट, २ न्यूनतम।

जड़—अचेतन द्रव्य।

जन्तु—पुनः पुनः जन्म धारण।

जन्म—प्राणो की प्रादुर्भूत व्यवस्था।

जम्बुद्वीप—मध्यलोक का एक भूखण्ड, समस्त द्वीप और समुद्र के बीच अवस्थित प्रदेश।

जय—१. अपने पक्ष की सिद्धि, २ जितेन्द्रिय।

जरा—आयु की क्षीणता ; बुढापा।

जरायु—गर्भ में रुधिर और मांस से आच्छादित जाल।

जरायुज—रुधिर और मॉस की जेर/झिल्ली के साथ जन्म लेने वाले प्राणी।

जलकाय—देखें–अप्काय।

जल्प—छलयुक्त वचन।

जल्ल—मल, पसीना आदि।

जाति—उत्पत्ति स्थान।

जितेन्द्रिय—इन्द्रिय और मन का निग्रही आत्म-विजेता।

जिन—इन्द्रिय-जयी तथा कषाय-जयी वीतराग अर्हन्त भगवान्।

जिनकल्प—संयम की प्रखरताओं के पालक एवं ऋद्धि-सिद्धि सम्पन्न साधु।

जीव—शारीरिक-प्राण एवं चैतन्य-प्राण से जीवन-यापन करने वाला अमूर्त द्रव्य ; कर्म से आबद्ध आत्मा।

जीव समास—जीव-स्थान , औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारणामि की गुण।

जीवास्तिकाय—जीव-प्रदेशो के समूह।

जुगुप्सा—ग्लानि-भाव , अपने दोषो का संवरण और दूसरो के दोषो का प्रगटन।

जैन—सदाचार एवं सद्विचार की अस्मिता को आत्मसात करने वाला जिन-अनुयायी।

ज्ञप्ति—ज्ञान।

ज्ञान—आत्मा का व्यक्तित्व; स्व-पर बोधक; सत्यार्थ प्रकाशक।

ज्ञाननिह्नव—ज्ञान तथा ज्ञान के साधन पास में होते हुए भी अस्वीकार करना।

ज्ञान-संक्लेश—आत्मा की असमाधिपूर्ण परिणाम-धारा से ज्ञान का पतन।

ज्ञानावरण—जीव के ज्ञान गुण को आवरित या मन्द करने वाला कर्म।

ज्ञानोपयोग—ज्ञान की प्रवृत्ति।

ज्ञायक—ज्ञाता।

ज्ञेय—ज्ञान का विषय; पदार्थ।

झ

झल्लरी—१. वलयाकार वाद्य-विशेष, २. झालर ।



ट

टीका—१. आगम-वृत्ति की विशद व्याख्या, २. ग्रन्थ विश्लेषण, ३. तिलक।



ड

डंडा—१. दंड, २. पंच-परमेष्ठी-अंकित लाठी जो साधु के नासाग्र परिमित होती है।



ढ

ढड्ढर—उच्च स्वर से उच्चारण करते हुए वन्दन करना।



ण

णमोक्कार-मन्त्र—मंगलसूत्र, पंच-परमेष्ठी की वन्दना ;
सर्वमान्य मन्त्राधिराज।



त

तत्त्व—१. तथ्य, द्रव्य का सर्वस्व, वस्तु का निज स्वरूप, २. चौथे नरक का चौथा पटल।

तत्त्वज्ञ—तत्त्व का जानकार।

तत्त्वार्थ—जैसा का तैसा ग्रहण; जो पदार्थ जिस रूप से स्थित है, उसका उसी रूप से स्वीकार।

तत्त्वार्थाधिगम—सुख-दुःख का आधारभूत यथास्थिति पदार्थ।

तद्भवमरण—वह मृत्यु, जिससे इस जन्म की तरह ही दूसरे लोक में जन्म हो; मनुष्य-जन्म में मरकर पुनः पुनः मनुष्य रूप में जनमना।

तद्भाव—प्रत्यभिज्ञान का कारण। देखें—प्रत्यभिज्ञान।

तनुक्लेश—काय-क्लेश का अपर नाम।

तन्तुचारणा—ऋद्धि-विशेष; निर्भार होने की शक्ति। मकडी के तन्तु पर भी चलने का सामर्थ्य।

तन्त्र—१. अर्थ का विस्तारक सूत्र या ग्रन्थांश-विशेष, २. दर्शन-मत, ३. विद्या-विशेष।

तप—तपस्या, विषय-कषायो को निरस्त करने के लिए बाह्य तथा आभ्यन्तर रूप से की जाने वाली क्रियाएँ।

तपन—तीसरे नरक का तीसरा पटल।

तपनतापि—आकाशोपपन्न देव।

तपस्वी—उपवास आदि अनुष्ठान करने वाला व्यक्ति/साधक विशेष।

तपोविद्या—उपवास आदि से विद्या की सिद्धि।

तप्त—प्रथम नरक का नवाँ पटल, तीसरी पृथ्वी का पहला पटल।

तरपणी—साधु का पात्र-विशेष, लकडी का लोटा।

तर्क—विचार-विमर्श, अटकल-ज्ञान, अनुमान में प्रवृत्ति; अविनाभाव व्याप्ति के ज्ञान में सहकारी।

ताप—सन्ताप; दुःख और वन्ध को सहन करना।

तापस—संन्यासी-विशेष।

तारक—१ तारने वाला, २ पिशाच जातीय व्यन्तर देवों का एक भेद, ३ सूर्य आदि नव ग्रह।

ताल-प्रलम्ब—तपस्वियो के अंकुर आदि।

तिर्यक्‌गच्छ—गुण-हानियो का प्रमाण।

तिर्यक्-गति—तिर्यंच-योनी।

तिर्यक् लोक—पुरुषाकार लोक का मध्यवर्ती भाग।

तिर्यंच—एक गति ; पशु-पक्षी आदि प्राणी ; देव, नारक तथा मनुष्य से इतर योनि में जन्म लेने वाले जीव-जन्तु ।

तिर्यंच-योनि—पशु-पक्षी आदि का जन्म-स्थान ।

तीर्थ—१. यात्रा-स्थान , पूज्य पवित्र स्थल, २. तीर्थंकर-प्रवर्तित शासन, ३ दर्शन, मत ।

तीर्थंकर—प्रथम परमेष्ठी, जिनेश्वर भगवान् ; तीर्थ के प्रवर्तक ।

तीर्थ-यात्रा—तीर्थ-गमन ; अकार्य से निवृत्ति ।

तीर्थ-सिद्ध—वह जीव, जो तीर्थ उत्पन्न होने पर मुक्ति प्राप्त करे ।

तुला—सौ पल के बराबर का माप ।

तृण-संस्तर—तृण से निर्मित विस्तर ।

तृण-स्पर्श-परीषह—नुकीले पदार्थों की चुभन से होने वाली वेदना को सहन करना ।

तृषा-परीषह—प्यास सहन करना ।

तेजकायिक—अग्नि का जीव , अग्निकायिक का दूसरा नाम ; देखें—अग्निकायिक ।

तेजोलेश्या—तीन शुभ लेश्याओं में से प्रथम ; तप-विशेष के द्वारा उत्पन्न शक्ति से अग्नि की ज्वाला ।

तेला—देखें—अट्ठम ।

तैजस्—अग्नि ।

तैजस् शरीर—आहार का पाचक , दीप्ति का कारणभूत शरीर।

तैजस् समुद्घात—तैजस् शरीर का संकोच-विस्तार।

त्यक्त-देह—सलेखना-विधि से छोड़ा गया शरीर।

त्याग—छोड़ना ; ससार, देह और भोगो से उदासीनता ; परभाव का ग्रहण न करना।

त्रस—स्पर्श-इन्द्रिय से अधिक इन्द्रिय वाले द्वीन्द्रिय आदि जीव, जो स्वयं चलने-फिरने में समर्थ हैं। त्रस-जीव।

त्रस-कायिक—जगम जीव , द्वीन्द्रियादि जीव।

त्रसनाली/त्रसनाड़ी—कुल चौदह रज्जु परिमित प्रदेश, जहाँ त्रस-जीव रहते हैं।

त्रस रेणु—१ आठ परमाणुओ का एक परिमाण-विशेष, २ बत्तीस हजार सात सौ अड़सठ परमाणुओं का एक परिमाण-विशेष।

त्रीन्द्रिय—स्पर्शन, रसना तथा घ्राण—इन तीन इन्द्रियो वाले जीव , चीटी आदि प्राणी।



द

दक्षिणत्व—सरलता ; अतिशय-विशेष ।

दण्ड—जीव-हिंसा ; चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में से एक ; धनुष का दूसरा नाम ।

दण्डासन—डंडासन ; स्थान-प्रमार्जन के लिए उपयोग किया जाने वाला साधुओं का एक उपकरण ।

दत्ति—अखण्डधारापूर्वक आहार, पानी आदि का मुनि को दान ।

दमन—संयम; ज्ञान, ध्यान, तप आदि से इन्द्रिय-विषयों और कषायों का निरोध ।

दया—प्राणियों पर करुणा ; अनुकम्पा ।

दर्प—बलकृत अहंकार का प्रदर्शन ।

दर्शन—अन्तर्मुख चित् प्रकाश ; सम्यक्त्व ; तत्त्वश्रद्धा ; ज्ञान-स्वरूप, पदार्थ का अभेद रूप में सामान्य ग्रहण ।

दर्शन-क्रिया—एक-दोष ; रमणीय रूप देखने की तीव्र अभिलाषा ।

दर्शन-प्रतिमा—ग्यारह प्रतिमाओं में प्रथम अंग; निर्मल सम्यग्दर्शन; उद्विग्नता एवं कदाग्रह से मुक्त निःशल्य आराधना।

दर्शनमोह-क्षपक—जिसमें दर्शन-मोह का क्षय करने योग्य विशुद्धता प्रकट होती है।

दर्शन-मोहनीय—तत्त्व-श्रद्धा का प्रतिबन्धक कर्म-विशेष।

दर्शनावरण—कर्म-विशेष; सामान्य ज्ञान का आवरक कर्म।

दर्शनाचार—निःशंका, निष्कांक्षा आदि सम्यक्त्व-गुणों को आचरण में मुखर करना।

दार्शनिक—श्रावक की उत्कृष्ट भूमिका, सम्यग्दर्शन एवं पंच-परमेष्ठी का अनन्य उपासक।

दंश-मशक-परीषह—डाँस, मच्छर आदि द्वारा परेशान किए जाने पर भी उनका प्रतिकार न करना।

दानान्तराय—सुविधा-सम्पन्न होते हुए भी दान देने के लिए उत्सुकता का अभाव।

दान्त—इन्द्रियों और कषायों का दमन करने वाला साधक।

दिगम्बर—जैन-धर्म के प्रमुख दो आम्नायों में एक; नग्न साधु।

दिग्व्रत—गुणव्रत का एक अंग ; परिग्रह-परिमाण व्रत की रक्षा के लिए व्यापार-क्षेत्र।

दीक्षा—भावसत्र ; अंतरंग सदावर्त ; प्रव्रज्या ; वैराग्य की उत्तम भूमिकाओं में प्रवेश की अनुमति।

दीक्षा-गुरु—दीक्षा देने वाले आचार्य।

दीक्षा-दान—दीक्षा देने की क्रिया।

दीन—धर्म, अर्थ और काम-सेवन की क्षमता विहीन पुरुष।

दुर्गति—नरक और तिर्यंच गति।

दुर्नय—स्वय की बात पर अडे रहना ; विरोधी धर्म की अपेक्षा को अस्वीकार करने वाली केवल स्वमत पकडने वाली दृष्टि।

दुपक्व आहार—भोगोपभोग परिमाण-व्रत का एक अतिचार ; ठीक से न पका आहार।

दुःषम-दुषमा—कालचक्र का एक विभाग ; काल-सीमा—इक्कीस हजार वर्ष।

दुःषम-सुषमा—कालचक्र का एक विभाग। समय-सीमा—बंयालीस हजार वर्षों से कम एक कोटाकोटि सागर।

दुःषमा—कालचक्र का एक विभाग। समय-सीमा—इक्कीस हजार वर्ष।

दृष्टान्त—साध्य और साधन धर्मों का सम्बन्धकारक ; संगतिपूर्वक विषय का ग्रहण।

देव—आप्त-पुरुष , अर्हन्, जिनेश्वर , देवता।

देवमूढ़ता—राग-द्वेषयुक्त देवताओं की उपासना।

देश—स्कन्ध का आधा भाग। देखें—स्कन्ध।

देशकाल—अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति का अवसर, काल।

देशना—उपदेश।

देशव्रत/देशविरत—१. एक गुणव्रत , व्रत-रक्षा के लिए उस देश में जाने का त्याग, जहाँ जाने से व्रत-भंग की सम्भावना हो , देश-देशान्तर में गमनागमन या व्यवसाय-सम्बन्धी मर्यादा रूप व्रत , २. पाँचवाँ गुणस्थान ; सम्यक्त्व के गुणों को आचरण में स्तोकतः/सीमित दायरे में प्रकट करना।

द्रव्य—गुणाधार पदार्थ , गुणो और पर्यायो का आश्रयभूत पदार्थ , जीव, पुद्‌गल आदि के भेद से छह प्रकार का।

द्रव्यकर्म—जीव के कषाय के योग से आबद्ध होने वाला सूक्ष्म कर्म-पुद्‌गल-स्कन्ध।

द्रव्य-निक्षेप—भावी परिणाम की योग्यता रखने वाले किसी पदार्थ या व्यक्ति-विशेष को वर्तमान में ही वैसा कह देना, जैसे राजपुत्र को राजा कहना।

द्रव्य-पूजा—गन्ध, पुष्प, नैवेद्य आदि से अर्हत् पूजा।

द्रव्य-प्रतिक्रमण—पापों से विरत न होकर मात्र प्रतिक्रमण-पाठ का उच्चारण।

द्रव्यमान—मात्रा।

द्रव्य-लिंग—बाह्य वेश।

द्रव्य-लिंगी—भेषधारी साधु।

द्रव्य-लेश्या—शरीर आदि पौद्गलिक वस्तु का रंग-रूप।

द्रव्य-वेद—पुरुष आदि का बाहरी आकार या चिह्न।

द्रव्य-हिंसा—प्राणि-वध।

द्रव्याचार्य—आचार्य-गुणों से रहित आचार्य; कहने-भर के आचार्य।

द्रव्याणु—पुद्गल-परमाणु।

द्रव्यानुयोग—वस्तु-विचार; पदार्थ की मीमांसा।

द्रव्यार्थिक नय—द्रव्य को मुख्य मानने वाली दृष्टि।

द्रव्येन्द्रिय—कर्म से रचित इन्द्रिय ।

द्वन्द्व—संयोग-वियोग आदि परस्पर विरोधी युगल-भाव ।

द्वीन्द्रिय—जीव , जिनके स्पर्शन और रसना दो ही इन्द्रियाँ होती हैं, जैसे केंचुआ, जोक आदि ।

द्वेष—अरुचिकर पदार्थों के प्रति अप्रीति का भाव ।

द्वयणुस्कन्ध—दो स्निग्ध/रूक्ष परमाणुओ के मिलने से उत्पन्न स्कन्ध ।



ध

धनुष—चार हाथ के बराबर माप।

धरण—एक माप, सोलह तोला।

धर्म—शुभ कर्म ; सदाचार ; जीव का निज स्वभाव ; अहिंसा, समता आदि का भाव।

धर्म-अनुप्रेक्षा—दुःख बहुल संसार में धर्म का ही रक्षक रूप में चिन्तवन।

धर्मकथा—धर्म सम्बन्धी बात ; अनुयोग-विचार।

धर्मकाय—धर्म का साधनभूत शरीर।

धर्मचक्र—जिनेश्वर भगवान् का धर्म-प्रकाशक चक्र।

धर्म-द्रव्य—गति-माध्यम ; जीव तथा पुद्गलो की गति में सहायता देने वाला एक अरूपी पदार्थ।

धर्म-ध्वज—धर्म-सूचक ध्वज ; इन्द्र-ध्वज।

धर्म-ध्यान—शुभ ध्यान-विशेष ; धर्म-चिन्तन ; आत्मा या अर्हत् स्वरूप का एकाग्र चिन्तवन।

धर्मलाभ—धर्म की प्राप्ति; साधु-गुरुजनों द्वारा दिया जाने वाला आशीर्वाद।

धर्मवाद—धर्म-चर्चा; बारहवाँ अंग-ग्रन्थ दृष्टिवाद।

धर्मसंज्ञा—धर्म-विश्वास; धर्म-बुद्धि।

धर्मास्तिकाय—धर्म-द्रव्य का दूसरा नाम।

धारणा—उपवास के पूर्ववर्ती दिन में किया जाने वाला एकाशन/भोजन।

ध्यान—चित्त की एकाग्रता, अन्तरलीनता।

धृति—मन की एकाग्रता।

ध्रौव्य—द्रव्य का नित्य अवस्थित सामान्य भाव, द्रव्य में उत्पाद-व्यय की प्रक्रिया का अभाव।



न

नन्दावर्त/नन्द्यावर्त—एक देव विमान विशेष ; इक्कीस दिनों का उपवास , सॉथिये का एक रूप ; स्वस्तिक ; द्वीप-विशेष ।

नन्दी—१ एक शख, जिसका मध्य भाग बडा हो, २. आगम ग्रन्थ-विशेष, ३. अर्हत्-साक्षी के लिए चौमुखी प्रतिमा की समवसरण/त्रिगडे पर स्थापना ।

नन्दीश्वर-द्वीप—एक द्वीप ; मध्यलोक का आठवाँ द्वीप ।

नमस्कार—प्रणाम ; प्रसिद्ध मन्त्र ; बहुआयामी महामन्त्र ।

नय—युक्ति ; वस्तु के किसी एक अंश का ग्राहक ज्ञान ।

नरक—नारक जीवों का स्थान ।

नरकपाल—परमाधार्मिक देव, जो नरक के जीवों को यातना देते हैं ।

नामकर्म—जीव के लिए विभिन्न शरीरों की रचना करने वाला कर्म ।

नाम-निक्षेप—संज्ञारोपण, किसी वस्तु या व्यक्ति विशेष का इच्छानुसार नाम रखना।

नालिका/नाली—घटिका, घडी, साढ़े अडतीस लव के बराबर का काल। (लव=४६ उच्छ्वास)

नास्ति—सप्तभगी का दूसरा भंग, पर द्रव्यादि की अपेक्षा वस्तु का अभाव।

नास्ति-अवक्तव्य—सप्तभंगी का छट्ठा भंग।

निकाचना—कर्मों का निविड़-बन्धन।

निकाचित—कर्मों का घने निविड रूप में बन्धन।

निक्षेप—न्यास, स्थापन, किसी पदार्थ को युक्तिपूर्वक जानने/जतलाने का साधन।

निगोद—वनस्पति के रूप में रहने वाले अनन्तानन्त जीवों की बस्ती, अनन्त जीवों का एक साधारण शरीर-विशेष।

निगोदिया—जीव, साधारण वनस्पति।

नित्य-निगोद—निगोद में चिर स्थायी प्रवास करने वाले जीव।

निग्रह—दण्ड, निरोध, नियन्त्रण।

निदान—मरते समय पर-भव में सुखादि प्राप्त करने की इच्छा।

निद्रानिद्रा—प्रगाढ निद्रा।

निबन्धन—कारण ; निमित्त।

निमन्त्रण—किसी वस्तु-विशेष की जरूरत होने पर गुरु या स्वधार्मिक से याचना।

निमित्त—हेतु ; सहकारी कारण।

निमित्त-ज्ञान—तिल, मसा आदि देखकर भविष्य बताने वाली विद्या-विशेष।

निमित्त-दोष—साधुओं की भिक्षा का एक दोष।

निमित्त-पिण्ड—भविष्य आदि बताकर प्राप्त की जाने वाली भिक्षा।

निमेष—संख्यातीत समयों का समूह ; पलक झपकने में लगने वाला समय-परिमाण।

नियाणा—देखें–निदान।

निरतिचार—अतिचार-रहित ; निर्दोष।

निरवद्य—निर्दोष ; विशुद्ध।

निर्ग्रन्थ—ग्रन्थिरहित ; परिग्रह-मुक्त साधु।

निर्जरा—क्षय करना ; कर्म-पुद्गलों का आत्मा से पृथक करना।

निर्यापकाचार्य—संल्लेखना सम्पन्न कराने वाले आचार्य ।

निर्वाण—मोक्ष , मुक्ति ; दुःख-निवृत्ति ।

निर्विचिकित्सा—सम्यग्दर्शन का एक अंग , जुगुप्सा का अभाव , फल-प्राप्ति में शंका का अभाव ।

निर्वेद—संसार, देह, भोग आदि से वैराग्य ।

निश्चय-नय—द्रव्यार्थिक नय ; वास्तविक पदार्थ को ही स्वीकार करने वाला दृष्टिकोण ।

निषद्या—आसन ; साधुओं का स्थान , उपाश्रय ।

निषेक—कर्म-पुद्गलो की रचना-विशेष ।

निष्कांक्षा—सम्यग्दर्शन का एक अग , निष्काम भाव , वस्तु, ख्याति, लाभ की इच्छा से राहित्य ।

निसर्ग—स्वभाव, प्रकृति , त्याग ।

निस्तरण—समाधिपूर्वक मरण ; रत्नत्रय का आमरण निर्दोष आचरण ।

निह्नव—सत्य का अपलाप करने वाला ; मिथ्यावादी ।

निःशंका—सम्यग्दर्शन का एक अंग, भय या आशंका से रहित ।

नील-लेश्या—तीन अशुभ लेश्याओ में से दूसरी ; तीव्रतर ।

नैगमनय—अनिष्पन्न पदार्थ को निष्पन्न कहना।

नैमित्तिक—निमित्तज्ञानी।

नैरयिक—नारक ; नरक में रहने वाले जीव।

नो—निमित्त ; निषेध।

नो आगम—आगम का अभाव।

नो इन्द्रिय—मन ; इन्द्रियों का अभाव ; अन्तःकरण।

नो कषाय—कषायों के साथ उदित होने वाले कर्म।

नो केवलज्ञान—अवधि और मनःपर्यव ज्ञान।

नो गुण—अयथार्थ।

नो जीव—अवस्तु ; जीव तथा अजीव से भिन्न पदार्थ।



प

पक्व—अग्नि-संस्कारित पका हुआ आहार।

पक्ष—पन्द्रह दिन-रात का समय, पखवाड़ा, अनुमान-विचार का एक अवयव, हिंसा-त्याग की प्रतिज्ञा; श्रावकाचार-विशेष।

पक्षधर्म—धर्मी का धर्म।

पक्षधर्मता—हेतु की पक्ष में उपस्थिति।

पक्षाभास—अनिष्ट, बाधित तथा सिद्ध साध्य धर्म युक्त धर्मी।

पच्चक्खाण—प्रत्याख्यान, निन्द्य-कर्मों के परित्याग की प्रतिज्ञा।

पञ्चाङ्ग—तिथि-दर्पण।

पञ्चाङ्ग-नमस्कार—दो हाथ, दो जानु/घुटने और मस्तिष्क—इन पाँच अंगों को नमाकर किया जाने वाला, प्रणाम।

पञ्चाचार—पाँच आचार—दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य।

पञ्चामृत—दूध, दही, घी, शक्कर और मधु का घोल।

पञ्चेन्द्रिय—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण की सामूहिक संरचना ; पशु, मनुष्य विशेष ।

पंचोला—पाँच दिन का उपवास ।

पडिलेहन—प्रतिलेखन ; रजोहरण, मयूर-पिच्छिका या चरवला से जीव-हिंसा का निवारण ।

पण्डित—आगमतत्त्व वेत्ता ।

पण्डित मरण—सलेखना , समाधिपूर्वक शुभ मरण ।

पण्डितापण्डित—श्रावक ।

पत्र—शब्द और अर्थ की गूढ़ता ।

पद—विभक्ति सहित शब्द समूह ; पद्य का चौथा भाग ; निमित्त, कारण ; प्रदेश , स्थान ।

पद-निक्षेप—पदनिश्चय ।

पदस्थध्यान—मन्त्रयुक्त मन की एकाग्रता ।

पदानुसारी—बुद्धि-बोध ; एक श्रुत पद से दूसरे अश्रुत पद का बोध ।

पदार्थ—द्रव्य ; वस्तु-तत्त्व ; गुणों/पर्यायों का प्रतिपाद्य विषय ; अस्तित्व ।

पद्मलेश्या—तीन शुभ लेश्याओं में से द्वितीय ; मन, वचन, काया की पवित्र प्रवृत्ति ।

पद्मासन—सहज साध्य सुखासन, जघा के मध्य भागो का मिलान।

परत्वापरत्व—प्रशसाकृत, क्षेत्रकृत, कालकृत भिन्नत्व-अभिन्नत्व।

परदृष्टि—अनेकान्त-दृष्टि का लोप।

परद्रव्य—आत्म-अतिरिक्त देहादि सर्व पदार्थ।

परपरिवाद—दूसरों के गुण-दोषों पर अभिभाषण।

परभाव—रागादि विकृत भाव।

परमभाव—वस्तु का शुद्ध स्वभाव।

परमब्रह्म—विशुद्ध आत्म-वोध।

परमाणु—पदार्थ का सूक्ष्मतम अविभाज्य अंश।

परमात्मा—आत्मा की परम अवस्था।

परमार्थ—परोपकार, शुद्ध तत्त्व-स्वभाव; परम उत्कर्ष।

परमेष्ठी—परम पद पर अवस्थित; अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु—पंच परमेष्ठी।

परम्परा—अतीत का वर्तमान से मिलाप, सम्मान्य आचार्य या शास्त्र द्वारा प्ररूपित बातो की लोक-मान्यता।

परलोक—मृत्यु के बाद प्राप्त होनेवाला दूसरा भव।

पर समय—अन्य मत, स्वसिद्धान्त के विपरीत, मिथ्यादृष्टि।

परा—प्रत्यावर्तन ; स्वभाव से उत्पन्न ; अतीन्द्रिय शक्ति ; निर्विकल्प समाधि ; निःशब्द अवस्था ।

परार्थ—परोपकार ; देखें—परमार्थ ।

परार्थाधिगम—शब्द रूप ज्ञान ।

परार्थानुमान—पक्ष आदि के वचन स्वरूप का व्यवहार ।

परावर्तन—पुनः पुन' आवृत्ति ; वापसी ।

परिकर्म—द्रव्य के गुण विशेष का परिणमन ; गणनाशास्त्र ; संस्कार का निमित्तभूत शास्त्र ।

परिग्रह—मूर्च्छा ; पदार्थों का संचय-संग्रह ।

परिज्ञा—पर्यालोचन ; ज्ञानपूर्वक प्रत्याख्यान ; बोधजन्य त्याग ।

परिणमन—द्रव्य के गुणों में होने वाला सूक्ष्म परिवर्तन ।

परिणाम—अवस्थान्तर की प्राप्ति ; वस्तु का तद्भाव ।

परितापनिकी—घातपूर्वक दूसरों को पहुँचायी जाने वाली पीड़ा ।

परिनिर्वृत—मुक्त ; निर्वाणगत जीव ।

परिव्राजक—संन्यासी ; अनन्त चतुष्टय धारक ।

परिषह—शारीरिक ; शारीरिक कष्ट-बाधाएँ ।

परीत—परिमित ।

परोक्ष—इन्द्रियजन्य ज्ञान , प्रत्यक्षभिन्न प्रमाण ।

पर्याप्त—पर्याप्तियुक्त ; शक्तिमान् ।

पर्याप्ति—पुद्गल-ग्रहण, परिणमन एव परिपाचन कराने वाली क्षमता ; पूर्णता ।

पर्याय—वस्तु-गुण , पदार्थ का सूक्ष्म या स्थूल रूपान्तरण ।

पर्याय-स्थविर—श्रामण्य जीवन में बीस वर्ष पूर्ण करने वाला साधु ।

पर्यायार्थिक—द्रव्य की मात्र वर्तमान पर्याय को ही ग्रहण करने वाला नय-विशेष ।

पर्युषण—जैन धर्म का सर्वमान्य स्वस्थ अध्यात्मपर्व ; उपासना का प्रतीक ।

पर्युषण-कल्प—पर्युषण में करणीय शास्त्रोक्त विधि , वर्षाकाल के चार महीनों में एक स्थान पर निवास करना ।

पर्व—अष्टमी, चतुर्दशी आदि तिथि विशेष ; धार्मिक उत्सव-दिवस ।

पल—तौल का प्रमाण ; चार वर्षों का एक पल ।

पल्य—एक योजन विस्तृत और एक योजन ऊँचा-गोल गड्ढा, धान रखने का बड़ा पात्र ।

पल्योपम—समय का एक सुदीर्घ परिमाण।

पाक्षिक श्रावक—एकदेशीय हिंसादि से विरत गृहस्थ।

पाखण्ड-मूढ़ता—असत्य धर्म के विज्ञापन में गृद्धता।

पाठ—शास्त्र-पठन; शास्त्र-उल्लेख; शास्त्र-व्याख्यान।

पाठक—उपाध्याय का दूसरा नाम; देखें—उपाध्याय।

पात्र—सम्यक्त्व-गुण से परिपूर्ण व्यक्ति या साधु विशेष।

पाद्—छह अंगुल बराबर का माप; वर्गमूल का अपर नाम; गति; पद्य का एक विभाग।

पाप—अशुभ कर्म-पुद्गल; कुकर्म।

पापश्रमण—श्रमण-मर्यादाओ का अतिक्रमण करने वाला साधु।

पारमार्थिक—आत्म-सापेक्ष-दृष्टि; प्रत्यक्ष ज्ञान विशेष।

पारिणामिक—जीव के स्वाभाविक गुण।

पार्श्वस्थ—शिथिलाचारी साधु; आचार एवं विचार में अपरिपक्वता।

पासत्था—देखें—पार्श्वस्थ।

पाहुड—उपहार, भेंट; जैन ग्रन्थ के अंश विशेष।

पिच्छी—पीछी; प्रतिलेखन-उपकरण।

पिंडस्थध्यान—अर्हत्, सिद्ध या देहस्थित आत्मा का ध्यान; आत्मचिन्तन।

पिपासा-परिषह—प्यास का परिसहन।

पीछी—देखें–पिच्छी।

पीतलेश्या—देखें–तेजोलेश्या।

पुण्य—शुभ कर्म पुद्गल; सत्कर्म।

पुद्गल—भौतिक द्रव्य।

पुद्गल-परावर्त—समस्त पुद्गल-द्रव्यो के साथ संयोग-वियोग।

पुरस्कार—सम्मानमूलक व्यवहार।

पुराण—ऐतिहासिक एव पारम्परिक तथ्यों के आधार पर तत्त्व-चिन्तन का निरूपण।

पुरुषार्थ—व्यक्ति का रुचिपूर्ण चेष्टाजन्य व्यवहार।

पूजा—पुरुषोत्तम की अर्चना।

पूर्वानुपूर्वी—क्रमशः की जाने वाली प्ररूपणा।

पृच्छना—शास्त्रीय तथ्यो के सन्दर्भ में पूछताछ करना।

पृथक्त्व—तीन से आगे और नौ से पूर्ववती सख्या जैसे चार, पाँच आदि।

पृथिवीकायिक—पृथ्वी को शरीर रूप से ग्रहण करने वाले जीव।

पैशुन्य—परोक्ष रूप से किया जाने वाला दोषारोपण।

पौषध—अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व में श्रावक का चारित्रव्रत ; पौषधोपवास का संक्षिप्त नाम ।

पौषधोपवास—पर्व-दिवसो में किया जाने वाला उपवास ; उपवाससहित आत्म-साधना में संलग्नता ।

प्रकल्प—उत्तम आचरण ।

प्रकीर्णक—काव्य के सूक्त-रत्नों का संकलन ।

प्रकृति—स्वभाव ; भेद ; आत्मा के फल विशेष का नाम ; कर्म-प्रकृति ।

प्रकृति-बन्ध—कर्म-पुद्गलों की विभिन्न शक्तियाँ ।

प्रचला—निद्रा-विशेष ; बैठे-बैठे या खडे-खडे नीद लेना ।

प्रचला-प्रचला—चलते-चलते नींद आना ।

प्रज्ञप्ति—प्रतिपाद्य विषय का निरूपण ; एक विद्या देवी ; जैन आगम ग्रन्थ विशेष ।

प्रज्ञा—ज्ञान की प्रकर्षता ।

प्रज्ञापना—प्ररूपणा ; समवायांग-सूत्र का अपर नाम ।

प्रज्ञा-परिषह—ज्ञान का अभिमान न करना ; बुद्धिहीन होने पर खेद न करना ।

प्रतर—पटल ; विघटन ।

प्रतिक्रमण— स्वभाव में वापसी, निन्द्य-कर्मों से निवृत्ति; प्रत्यावर्तन।

प्रतिज्ञा—शपथ, साध्य वचन का निर्देश, धर्म-धर्मी का स्थापन।

प्रतिपत्ति—निश्चयात्मक बोध, सावधानीपूर्वक उपदेश-ग्रहण।

प्रतिपात—प्रतिपादन; पुनः पतन, संयम-सेवन।

प्रतिबुद्ध—आत्म-जागृत, सम्यक्त्व-विकास।

प्रतिभा—ज्ञान एव क्षमता की उत्तरोत्तर वृद्धि।

प्रतिमा—श्रावक के नियम विशेष, गृहीत नियम का जीवन पर्यन्त निर्वाह; मूर्ति।

प्रतिमान्—लघु नाप-तौल; पूर्व की अपेक्षा का सद्भाव।

प्रतिलेखन—निरीक्षण, प्रमार्जन, देखें–पडिलेहन।

प्रतिष्ठा—स्थापना; प्रतिमा में परमात्म-स्वरूप का संस्थापन।

प्रतिष्ठापन-समिति—यतनापूर्वक वस्तु का विसर्जन।

प्रत्यक्ष—आत्म-सापेक्ष प्रमाण, इन्द्रिय-निरपेक्ष ज्ञान।

प्रत्यभिज्ञान—प्रत्यक्ष दर्शन और स्मरण के सहयोग से होने वाला ज्ञान, 'यह वही है, जो पहले था'—इस प्रकार का ज्ञान।

प्रत्यय—ज्ञान का कारण ; ज्ञेय-पदार्थ ।

प्रत्याख्यान—सावद्य कार्यों से निवृत्ति ; परित्याग करने की प्रतिज्ञा ; आगामी दोषों के त्याग का संकल्प ; पच्चक्खाण ।

प्रत्याहार—इन्द्रिय-संयम से उत्पन्न उत्कर्षण ; इन्द्रिय एवं मन की शान्ति ।

प्रत्येकजीव—वनस्पति के आश्रित जीव ।

प्रत्येकनाम—एक जीव द्वारा एक शरीर की रचना कराने वाला कर्म ।

प्रत्येक बुद्ध—ससार या पदार्थ की अनित्यता से उत्पन्न वैराग्य एवं परमार्थ का ज्ञान प्राप्त करने वाला साधु ।

प्रत्येक बुद्ध सिद्ध—प्रत्येकबुद्ध होकर मुक्त होने वाला जीव ।

प्रत्येक शरीर—प्रत्येक नाम कर्म के उदय से एक जीव द्वारा एक ही शरीर की रचना । देखें—प्रत्येक नाम ।

प्रथमानुयोग—चरित्र और पुराण रूप श्रुत ।

प्रदक्षिणा—परिक्रमा ; कृतिकर्म का दूसरा भेद ; परमात्मा या गुरु को वन्दन करते समय लगाई जाने वाली फेरी ।

प्रदेश—एक परमाणु के बराबर का आकाश ; देश का आधा भाग ; अविभाज्य सूक्ष्म अवयव , आकाश की माप-इकाई ।

प्रदेशमोक्ष—कर्म-प्रदेशों की निर्जरा ; कर्म-प्रदेशों का अन्य प्रकृतियों में संक्रमण ।

प्रदेशबन्ध—कर्म-परमाणुओं का आत्म-प्रदेशो के साथ सम्बन्ध ।

प्रदेशाग्र—कर्मों के दलिको का प्रमाण , एक-एक जीव-प्रदेश को घेरने वाले पुद्गल ।

प्रभावना—गौरव ; आदर्श पुरुषों के चरित्र से धर्म को प्रकाश में लाना, स्वधार्मिक बन्धुओं को किसी वस्तु या धन से सम्मानित करना ।

प्रमत्त—आत्म-स्वभाव के प्रति जागरुकता का अभाव , राग-द्वेष-रत ।

प्रमत्त-संयत—साधक की छठी भूमिका ; सयम के साथ-साथ रागादि की मंद विद्यमानता ।

प्रमाण—संशय-मुक्त सम्यग्ज्ञान , यथार्थ ज्ञान का साधन , परिमाण ।

प्रमाण-गव्यूति—दो हजार धनुष के बराबर का माप ।

प्रमाण-योजन—चार प्रमाण गव्यूति के बराबर का माप।

प्रमाणांगुल—पाँच सौ उत्सेधांगुल का प्रमाण।

प्रमाता—प्रमेति क्रिया का कर्त्ता।

प्रमाद—सदाचार एवं सद्विचार के प्रति अनुत्सुकता ; कर्त्तव्य में अप्रवृत्ति।

प्रमादचर्या—बिना किसी उद्देश्य के की जाने वाली सावद्य क्रिया।

प्रमार्जन—जीवों की रक्षा के लिए रजोहरण, मयूरपिच्छी या किसी कोमल उपकरण से यतनापूर्वक झाड़ना/पोंछना।

प्रमेय—प्रमाण का विषयभूत पदार्थ।

प्रमोद—गुणियों के गुणों के चिन्तन से होने वाली आनन्द-अनुभूति।

प्रवचनमाता—माता के समान रत्नत्रय की रक्षा करने वाली समिति एवं गुप्ति।

प्रवर्तिनी—अधिष्ठात्री साध्वी ; साध्वी-प्रमुखा।

प्रविचार—मैथुन-सेवन।

प्रव्रज्या—दीक्षा ; संयम-स्वीकृति।

प्रशम—राग, द्वेष आदि दोषों की तीव्रता का अभाव।

प्रशस्त-राग—देव, गुरु एवं धर्म के प्रति निष्ठा।

प्रशस्त विहायोगति—उत्तम गति का कारण।

प्राकृत—स्वभाव-सिद्ध, प्रकृति से उत्पन्न; भाषा; संस्कृत का अपरिष्कृत रूप।

प्राज्ञश्रमण—असाधारण मेधा सम्पन्न मुनि।

प्राण—जीवन के आधारभूत तत्त्व; मन-वचन-काय रूप तीन बल, पाँच इन्द्रियाँ और श्वासोच्छ्वास—ये दस प्राण हैं।

प्राण-प्रतिष्ठा—मूर्तिमान् के अनुरूप करना; जीवन्त करने की प्रक्रिया।

प्राणायाम—श्वास द्वारा शरीर पर शासन, प्राण-शक्ति का नियन्त्रण; श्वास और प्रश्वास का निरोध।

प्राणातिपात—हिंसा; प्राणियो का प्राणो से वियोग।

प्राणातिपात-विरमण—अहिंसा; जीवों के प्राण-घात का त्याग; प्रथम मूल गुण।

प्राप्ति—लाभ, किसी भी दूरस्थ चीज को स्पर्शित करने की ऋद्धि विशेष।

प्रायश्चित्त—आत्म-शुद्धि के लिए कृत दोषो की आलोचना; तप का एक अंग।

प्रायोपगमन—अचित्त ; जन्तु रहित ; दोष मुक्त ; जीवों के संचार से रहित स्वीकार किया जाने वाला मरण ; पादपोगमन/पादोपगमन का दूसरा नाम ।

प्रासुक—अचित्त ; जन्तु-रहित ; दोष मुक्त ; जीवो के संयोग या संचार से रहित जल, भोजन, भूमिमार्ग इत्यादि ।

प्रोषध—एकाशन ; एक वार भोजन ग्रहण ।

प्रोषधोपवास—उपवास सहित धर्मानुष्ठान ; सोलह प्रहर तक सर्व सावद्य क्रिया एव भोजन का त्याग ।

●

फ

फासु—देखें–प्रासुक।



ब

बन्ध—जीव-कर्म-संयोग ; कर्मों का जीव-प्रदेशो के साथ संयोग।

बल—सामर्थ्य ; सैन्य ; मन, वचन व शरीर के प्राण।

बलि—त्याग ; निग्रह।

बहिरात्मा—देह को आत्मा मानकर भौतिक भूमिका पर जीने वाला मिथ्यादृष्टि।

बहुप्रदेशी—अस्तिकाय ; देखें–अस्तिकाय।

बहुबीज—एक फल में अनेक बीजो की विद्यमानता।

बहुश्रुत—आगमो का ज्ञाता।

बादर—स्थूल ; विभाजित होने पर भी जुडने में समर्थ, जैसे दूध, घी, पानी आदि ; नववाँ गुणस्थानक।

बादर जीव—आधार के आश्रित जीव।

बादर सम्पराय—स्थूल कषाय सम्पन्न जीव।

बाल—अज्ञानी ; मिथ्या दृष्टि ; असंयत।

बालतप—अज्ञानपूर्वक तप।

बालपण्डित—आंशिक त्याग करने वाला श्रावक।

बालपण्डित-मरण—आंशिक विरत सम्यग् दृष्टि की मृत्यु।

बालबुद्धि—अनभिज्ञ।

बालमरण—विरतिरहित अवस्था में होने वाला मरण; असंयमी की मृत्यु।

बालमुनि—नवदीक्षित साधु; ज्ञान एवं यतना-शून्य मुनि।

बीजबुद्धि—छोटे से प्रकरण से तत्सम्बंधित अर्थ की समग्रता का अनुसरण।

बुद्ध—आत्म जाग्रत पुरुष; तत्त्व परिज्ञाता।

बेइन्द्रिय—द्वीन्द्रिय जीव।

बोधि—रत्नत्रय, जिन-प्रवर्तित धर्म की प्राप्ति।

ब्रह्मचर्य—आत्मरमण; सम्भोग या मैथुन से निवृत्ति।

ब्राह्मीलिपि—भगवान् आदिनाथ द्वारा प्रवर्तित लिपि कला।



भ

भक्त-कथा—भोजन-प्राप्ति के उद्देश्य से की जाने वाली वार्ता।

भक्तपरिज्ञा—आहार का परित्याग।

भक्तप्रत्याख्यान—सलेखना-विधि में देह-मुक्ति के लिए धीरे-धीरे भोजन त्याग करने की प्रक्रिया; आहार-त्याग रूप अनशन।

भक्ति—देव, गुरु, धर्म, संघ एवं शास्त्र के प्रति होने वाला विशुद्ध अनुराग।

भट्टारक—महापण्डित; बुद्धिजीवी लोगों का मार्गदर्शक; गच्छ-विस्तारक; अतिशय सम्माननीय सम्बोधन।

भव—संसार; चतुर्गति-भ्रमण।

भवकेवली—जीवन-मुक्त; अघाती कर्मों के क्षय हुए विना केवल-ज्ञान प्राप्त करने वाले जीव।

भवप्रत्यय—अवधि-ज्ञान का एक भेद; विना पुरुषार्थ जन्म से प्राप्त होने वाला आत्मोत्थ अवधि ज्ञान।

भवसिद्धिक—मुक्तिगामी, उसी जन्म में या भावी जन्म में मुक्ति प्राप्त करने वाला जीव।

भव्य—मुक्ति-योग्य जीव।

भव्यसिद्ध—देखें—भवसिद्धिक।

भाव—जीव का परिणाम, चित्त-विकार, द्रव्य की पूर्वापर अवस्था।

भावकर्म—द्रव्य-कर्म की शक्ति, उपयोग सहित, रागादि भाव; पारमार्थिक पदार्थ।

भावधर्म—जीव का स्वभाव।

भावनमस्कार—आप्त पुरुषों/गुरूओं के प्रति अनुराग।

भावना—ध्यान के अभ्यास की क्रिया, देखें—अनुप्रेक्षा।

भावनिक्षेप—वर्तमान विवक्षित पर्याय से उपलक्षित द्रव्य; वर्तमान पर्याय युक्त वस्तु को उससे सम्बंधित नाम से ही संबोधित करना, जैसे राज्यनिष्ठ राजा को राजा कहना।

भावनिद्रा—ज्ञान, दर्शन और चारित्र के प्रति उत्सुकता का अभाव।

भावनिर्जरा— पुद्‍गलों की कर्म-पर्यायों का विनाश।

भावपूजा—परमात्मा के गुणों का स्मरण।

भावप्रतिक्रमण—निर्मलता की ओर वापसी, राग-द्वेष के आश्रित दोषों से मुक्ति, आत्म-समीक्षा एवं ध्यान-योग।

भावप्राण—समस्त कर्मों का क्षय; निजत्व की मौलिकता।

भावलिंग—स्त्री-पुरुष आदि की अभिलाषा स्वरूप प्रवृत्ति; साधक का निस्संग, निष्कषाय, समत्व-भाव।

भावहिंसा—मन एवं विचारों की तरंगों में दूसरों को पीड़ा पहुँचाने का भाव; रागादि की उत्पत्ति के रूप में होने वाली हिंसा।

भाषा समिति—वाणी-विवेक; बोल-चाल विषयक यतनाचार।

भिक्षा—गोचरी; साधु द्वारा लिया गया स्वाद-निरपेक्ष, सात्विक आहार।

भिक्षु—मुनि।

भूमिसंस्तर—साधु के शयन-योग्य निर्दोष/निर्जन्तुक भूमि।

भेद-विज्ञान—अध्यात्म-विद्या; जड और चेतन/शरीर और आत्मा के पार्थक्य की अनुभूति।

भेदसंघात—विच्छिन्न होने पर पुनः संयोग प्राप्त करने की क्रिया; स्कन्ध-निर्माण का आधार।

भोक्तृत्व—कर्तृत्व के कारण शुभाशुभ कर्म-फलों का उपभोग।

भोगान्तराय— वैभव-सम्पन्न होते हुए भी उपभोग में बाधा।

भोगपरिभोगपरिमाणव्रत—भोग-लिप्सा के नियन्त्रण के लिए भोग्य पदार्थों के सेवन की मर्यादा स्वीकार करना।



म

मतिज्ञान—देखें–आभिनिबोधिक ज्ञान ।

मद—गर्व ; कुल, जाति, लाभ, बल, रूप, ज्ञान, तप और सत्ता आठ प्रकार का अहंकार ; उन्माद ; आकर्षण का कारण ।

मध्यलोक—ऊर्ध्व लोक एवं अधोलोक का मध्यवर्ती भाग ; झालर के आकार का लोक ।

मन—पर-पदार्थ के प्रकाशन में अतिशय साधक ; आत्मा का करण ; मनोवर्गणा की परिणति स्वरूप द्रव्य इन्द्रिय ; अन्तःकरण ।

मनःपर्यव—ज्ञान विशेष ; दूसरो के मन की अवस्था को जान लेने वाला ज्ञान ।

मार्ग—मोक्ष का उपाय ।

मार्गणा—धर्म या गुरु की गवेषणा ; ऊहापोह ।

मार्गरुचि—जिन-प्रवर्तित धर्म के श्रवण मात्र से उत्पन्न होने वाली तत्त्व श्रद्धा ।

मार्गणास्थान—जीव के अन्वेषण के चौदह धर्म—गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, सयम, दर्शन, लेश्या-भव्यत्व, सम्यक्त्व संज्ञित्व, आहारकत्व ।

मार्दव—अभिमान-रहित मृदु परिणाम ।

मिथ्याचारित्र—अशुभ-प्रवृत्ति ।

मिथ्यात्व—तत्त्व पर अश्रद्धा ; सत्य-धर्म का अविश्वास , चौदह गुणस्थानों में प्रथम ।

मिथ्यादृष्टि—यथार्थ धर्म में अरुचिशील ।

मिश्र—तीसरा गुणस्थान , सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्व का मिश्रण, दो भिन्न/विपरीत तत्त्वों का मेल ।

मुक्त—द्रव्य-बन्ध एव भाव-बन्ध से रहित ।

मुक्ति—प्राण-विषयक और इन्द्रिय विषयक असंयम का त्याग ; मोक्ष ।

मुनि—मन की शान्त अवस्था का द्योतक ; राग-द्वेष-रहित साधु।

मुमुक्षु—मोक्ष का अभिलाषी ; बन्धन-मुक्त।

मुहूर्त—अड़तालीस मिनट का समय।

मूर्च्छा—मोहान्धता।

मूढ़ता—रूढ़िगत भेड़चाल की स्वीकृति ; अन्धविश्वास ; लोक-मूढता, देवमूढता और गुरुमूढता के रूप में तीन प्रकार की।

मृषावाद—अप्रशस्त वचन।

मैत्रीभावना—विश्वमित्र के रूप में स्वयं की प्रस्तुति, लोक कल्याण के लिए मानवीय-मूल्यों का सम्मान, प्राणी मात्र के प्रति आत्मीयता।

मैथुनसंज्ञा—संभोग की अभिलाषा, जीव का मैथुन-परिणाम।

मोक्ष—मुक्ति ; लोक के अग्रभाग में शाश्वत स्थिति ; कर्म एवं देह से छुटकारा, वासना-विनाश ; निर्वाण।

मोक्षमार्ग—सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र से सुशोभित साधना पथ।

मोक्षविनय—कर्मक्षय के लिए सत्प्रवर्तन ।

मोह—मिथ्यादर्शन ; राग, द्वेष तथा कर्म-बन्ध का मूल ; श्रेयाश्रेय के विवेक का अभाव ।

मोहनीय—मद्यपान की तरह श्रेयाश्रेय के विवेक को विकृत करने वाला सशक्त कर्म ।

य

यति—मुनि का उपनाम ; संयम एवं ध्यान-योग में यत्नशील ।

यथाख्याति चारित्र—आत्म-स्वभाव में स्थिति ; कषाय की निर्मूलता ।

यम—जीवन-भर के लिए स्वीकार किया जाने वाला धार्मिक नियम ।

यव—आठ जुओ का एक माप विशेष ; आठ सरसों के बराबर का एक यव ।

याचना-परिषह—साधु द्वारा आहार-चर्या में आने वाले कष्टों को सहन करना ।

युग—पाँच वर्षों के बराबर का काल ।

युगसंवत्सर—युग का पूरक वर्ष ।

युति—संयोग ; जीवादि द्रव्यों का मिलाप ।

यूका—आठ लीखों के बराबर का माप ।

योग—मन, वचन और शरीर की चेष्टा का कारण-भूत आन्तरिक प्रयत्न।

योगोद्वहन—पारणाकाल और स्वाध्याय आदि के निरोधपूर्वक योगों के धारण या निर्वाह का नाम।

योजन—चार कोस का एक योजन।

योजनपृथक्त्व—योजन का आठ गुना भाग।

योनि—जीवों की उत्पत्ति के योग्य चौरासी लाख स्थान।

र

रज्जु—जग श्रेणी का सातवाँ भाग ।

रति—विषयो में उत्सुकता ।

रत्नत्रय—सम्यग् दर्शन ज्ञान एवं चारित्र रूप मोक्ष-मार्ग ।

रत्नि—एक हाथ का माप ; चोइस अंगुल के बरावर का माप ।

रस—जिह्वा का विषय ।

रसकषाय—रस के आश्रय से उत्पन्न कषाय ।

रसगौरव—अनिष्ट रस के विषय में अनादर का भाव ।

रसपरित्याग—स्वाद-विजय के लिए घी, दूध, नमक आदि रसो का त्याग ; तप का एक अंग ।

राक्षसविवाह—बलपूर्वक कन्या का ग्रहण ।

राग—आसक्ति ; चारित्रमोह ; इष्ट विषयो के प्रति प्रीति-भाव ।

राजकथा—राजाओ या राज्य से संबंधित वचनालाप ।

राजपिण्ड—राजा या राज्य द्वारा दिया गया आहार।

राजर्षि—अक्षय ऋद्धि के धारक ऋषि मुनि।

राजु—देखें—रज्जु।

रात्रिभक्तव्रत—सूर्यास्त के बाद आहार सेवन का त्याग; दिन में स्त्री सेवन का त्याग किन्तु रात्रि में छूट।

रुद्र—जिनेश्वर का नामांतर, रौद्र कर्म-समूहो का विनाशक।

रूक्ष—चिकनाई रहित गुण; वन्ध का मूल हेतु, परमाणु का विकर्षण गुण।

रूपस्थध्यान—अरहंत का ध्यान, परमेष्टि के स्वरूप को प्रतिमा में आरोपित कर किया जाने वाला ध्यान।

रूपातीत ध्यान—केवल ज्ञान-शरीरी सिद्ध भगवान् का या निज शुद्धात्मा का ध्यान।

रेचक—प्राणायाम का एक अग, अतिशय प्रयत्नपूर्वक उदर से धीरे-धीरे वायु को निकालना।

रोष—क्रोधी पुरुष की तीव्र परिणति।

रौद्रध्यान—अशुभ ध्यान; हिंसा एव कषायमूलक चिन्तन। ●

ल

लक्षण—लांछन; पहचान; विशिष्टता; निशान।

लघिमा—शरीर को वायु से अधिक सूक्ष्म करने वाली ऋद्धि विशेष।

लब्धि—ज्ञानावरण कर्म का विशेष क्षयोपशम, पदार्थ को जानने की शक्ति।

लब्धिस्थान—चारित्र-स्थान।

लव—समय का एक सूक्ष्म परिमाण; मुहूर्त का सतरहवाँ अंश; सात स्तोक।

लाघव—ममत्व-त्याग; क्रिया-कुशलता; लघुता; शौचधर्म।

लांछन—चिह्न; विशिष्टता; पहचान।

लाभान्तराय—लाभ में बाधा पहुँचाने वाला कर्म।

लिक्षा—आठ बालाग्रों का परिमाण।

लिंग—साधु के रजोहरण आदि चिह्न; साध्य के साथ साधन का अविनाभाव सम्बन्ध; इन्द्रिय विशेष; पेड़ु के नीचे का स्थान।

लेपकर्म—मिट्टी, मोती या अन्य किसी वस्तु के लेप से प्रतिमा पर की जाने वाली सौन्दर्य-रचना, मूर्ति का जीर्णोद्धार।

लेश्या—कषाय-अनुरंजित योगों की प्रवृत्ति।

लोक—असीम आकाश का मध्यवर्ती पुरुषाकार क्षेत्र।

लोक-नाभि—मेरु-पर्वत।

लोक-नाली—लोक के मध्य में चौदह रज्जु/राजु लम्बी और एक वर्ग राजु मुँहवाली नलिका।

लोक-मूढता—लौकिक क्रियाकाण्डों में अभिरुचि।

लोकाकाश—षट् द्रव्यों का कार्य क्षेत्र।

लोकाग्र—लोकाकाश का शीर्ष भाग।

लोकाग्र चूलिका—सिद्ध-शिला।

लोकान्त—लोकशिखर, लोक का अन्तिम भाग।

लोकालोक—सम्पूर्ण आकाश-क्षेत्र।

लोकप्रवाद—जनश्रुति।

लोभ—लालच, तृष्णा।



व

वचनगुप्ति—अनर्गल वचन की प्रवृत्ति का गोपन।

वत्सलता—प्राणी मात्र से स्नेह ; मातृवत् वात्सल्य।

वध-परीषह—घातक प्रहारो से होने वाली शरीर की नश्वरता का स्वागत।

वनस्पतिकायिक—वनस्पति, पेड़-पौधे।

वन्दना—तीर्थंकर, तीर्थंकर-प्रतिमा, गुरु, गुरु-प्रतिमा या सम्मान्य व्यक्ति को किया जाने वाला नमस्कार।

वयःस्थविर—सत्तर वर्ष से अधिक आयु सम्पन्न साधु।

वर्गणा—सजातीय समूह।

वर्तना—पदार्थों की कालाश्रित वृत्ति ; परिवर्तन ; ज्ञात सूत्रो की पुनरावृत्ति।

वर्षावास—वर्षा ऋतु में साधु का चार महीनो के लिए किसी एक स्थान पर रुकना ; चातुर्मास-प्रवास।

वस्तु—गुण एवं पर्यायों का स्वामी।

वाचक—बारह अंगो के ज्ञाता , आगमवेत्ता , एक पद।

वाचना—अध्यापन।

वाचनाचार्य—साधुओ को स्नातक अध्ययन कराने वाला प्रज्ञा-श्रमण।

वातरशना—साधु।

वात्सल्य—गुरु, अतिथि, रुग्ण, तपस्वी, साधर्मीजन के प्रति अनुराग।

वायुकायिक—जीव द्वारा वायु का शरीर धारण।

वारण—निषेध।

वार्षिक योग—वर्षा योग ; आषाढ़-पूर्णिमा से कार्तिक पूर्णिमा तक की अवधि ; चातुर्मास।

वासना—संस्कार , आन्तरिक विकार , विकृत भाव।

विकथा—संयम-विघातक वार्ता।

विकल—अधूरा।

विकल—अन्तरंग में हर्ष-विषाद रूप परिणाम।

विकल प्रत्यक्ष—ज्ञान की परिमितता।

विक्रिया—रूप-परिवर्तन की प्रक्रिया ; देव या नारकीय जीवों के शरीर-निर्माण की विधि।

विग्रह-गति—भवान्तर-प्राप्ति के लिए जीव की गति।

विचिकित्सा—बुद्धि-भ्रम ; जुगुप्सा ; गुलामी।

विजिगीषुकथा—वाद-विवाद ; आखिरी निर्णय तक शास्त्रार्थ करना।

विज्ञान—चारित्र ; ज्ञान-वैशिष्ट्य।

वितर्क—तर्क की प्रगाढता।

वितस्ति—बारह अंगुल के बराबर का माप।

विदारण-क्रिया—दूसरों के दोषों का भंडाफोड़।

विदिशा—उपदिशा ; विपरीत दिशा ; असंयम।

विदेह—देह-मुक्त ; शारीरिक सस्कार से रहित ; क्षेत्र-विशेष का नाम—महाविदेह।

विद्या—सम्यग्ज्ञान ; मन्त्र ; देवी।

विद्याचारण—इच्छित स्थान पर गमनागमन की शक्ति।

विद्याधर—क्षत्रियों का एक वंश-विशेष, विद्या-सम्पन्न मनुष्य या श्रमण।

विद्यासिद्ध—सर्व विद्या-सम्पन्न ; महाविद्या का अधिपति।

विनय—शिष्टता ; आचार-संहिता ; मोक्ष-मार्ग।

विपर्यय—विपरीत ; पदार्थ में विरोधी तत्त्व/अर्थ का आरोपण ; सीप में चाँदी का निश्चय।

विपाक—कर्म-परिणाम।

विपाक-विचय—धर्म-ध्यान का एक भेद ; कर्म-फल का चिन्तन।

विपुलमति—मन या मतिज्ञान के विषय का ग्राहक, मनः पर्यवज्ञान का एक भेद।

विभंगज्ञान—विपरीत अवधि-ज्ञान, मिथ्यात्म मिश्रित अवधि-ज्ञान।

विभाव—स्वभाव-विपरीत, विचार करना, विवेकपूर्वक ग्रहण करना।

विभाव-पर्याय—मनुष्य, नारक और देव रूप में जीवन-धारा।

विभाषा—विकल्प-विधि ; विधि और निषेध का विधान ; विविध भाषण ; सूत्रार्थ की विशेष व्याख्या ।

विभ्रम—चित्तभ्रम ; सन्देह ; काम-विकार ।

विमर्श—विचार ; ईहा और अपाय की मध्यवर्ती स्थिति ।

विमान—देवो का निवास भवन ; आकाश में गति करने वाला रथ ।

विरताविरत—संयतासयत ; स्थूल पापो का त्याग, किन्तु सूक्ष्म पापो से अनिवृत्ति ।

विरति—अलगाव ; चारित्र का आविर्भाव ।

विरमण—त्याग ; व्रत-प्रत्याख्यान ।

विराग—विषयो से विरक्ति ।

विराग-विचय—विषयो से विरक्ति का अनुचिन्तन ।

विराधना—खण्डन ; अपराध ; साधना में आये दोषो की आलोचना न करना ।

विलेपन—घिसे गये चन्दन, कुंकुम या मोती का लेप ।

विविक्त—निर्बाध स्थान ; आप्त-पुरुष का नामान्तर ; शरीर एवं कर्म-मुक्त ।

विविक्त-शय्यासन—निर्जन क्षेत्र मे शयन ; निर्बाध स्थान में शय्या व आसन लगाना ; तप का एक अग ।

विवेक—वस्तु-स्वरूप का निर्णय, यतना; उपयोग, विचार-पूर्वक कार्य करना।

विशुद्धि—कषाय का अभाव; आत्म-निर्मलता।

विशेष—एक पदार्थ की दूसरे पदार्थ से भिन्नता, विसदृश परिणाम।

विषय—द्रव्य-पर्याय रूप अर्थ, इन्द्रियों के रस आदि विषय।

विषयी—इन्द्रिय।

विसम्भोग—दान आदि के द्वारा संव्यवहार का अभाव।

विसंवाद—विपरीत कथन, प्ररूपणा।

विहायोगति—आकाश-मार्ग से गमन, कर्म का एक भेद।

विहार—देश-देशान्तर में गमन।

विचार—अर्थ, व्यंजन और योग का परिवर्तन।

वीतराग—आत्म-विजेता, राग-द्वेष से मुक्त साधक।

वीरासन—दोनों पैरों को दोनो जंघाओं के ऊपर रखना।

वीर्य—शक्ति-विशेष; आत्म-परिणाम।

वीर्याचार—प्रयत्नपूर्वक तप में प्रवृत्ति, सदाचार एवं सद्विचार मूलक कार्यों में शक्ति का उपयोग।

वीर्यान्तराय—वीर्य-क्षय, शक्ति-अवरोध कर्म का भेद।

वृत्ति-परिसंख्यान—वृत्ति-संक्षेप ; अभिग्रहपूर्वक आहार-चर्या।

वेद—मैथुन-क्रिया के प्रति मुग्ध-भाव ; सुख-दुःख का अनुभव ; पदार्थ-विज्ञान का विशेषज्ञ।

वेदना-समुद्घात—शारीरिक संतप्त अवस्था में आत्म-प्रदेशों का बहिर्गमन फैलाव।

वेदनीय—कर्म-विशेष ; सुख-दुःख का कारणभूत कर्म।

वेयावच्च—वैयावृत्य, साधु की परिचर्या।

वेतरणी—नरक की एक भयंकर नदी।

वैक्रिय—विशिष्ट क्रिया से निर्मित शरीर का वाहक देव, नारक या सिद्धि-सम्पन्न पुरुष।

वैनियिकी बुद्धि—विनयपूर्वक अध्ययन करने से समुत्पन्न मति।

वैमानिक—विमानों में रहने वाले देव ; देखें—विमान।

वैयावृत्य—सेवा-सुश्रूषा, रोगी, ग्लान एवं परिश्रान्त व्यक्ति या साधु की स्नेहसहित सेवा।

वैराग्य—रागरहित अवस्था।

व्यंजन—शब्द का प्रकाशन ; इन्द्रियों के द्वारा पदार्थ-बोध या पदार्थ-प्राप्ति ; अवग्रह का एक भेद।

व्यंजन-नय—शब्द के भेद से वस्तु-भेद की ग्राहकता।

व्यंजनावग्रह—प्राप्त अर्थ का ग्रहण , व्यक्त शब्द का अव्यक्त ग्रहण।

व्यतिक्रम—अतिक्रम और अतिचार के बीच की स्थिति।

व्यतिरेक—कार्य-कारण-भाव , कारण के अभाव मे कार्य के अभाव की स्वीकृति।

व्यय—पूर्व-पर्याय का विनाश।

व्यवसाय—अन्वेषित पदार्थ का निश्चय ; अनुष्ठेय के अनुष्ठान में उत्साह।

व्यवहार—नय-विशेष , वस्तु-परीक्षा का एक दृष्टिकोण ; मुमुक्षु की प्रवृत्ति-निवृत्ति का आधारभूत ज्ञान-विशेष , दोष-शुद्धि के लिए किया जाने वाला प्रायश्चित्त , लोक-परम्परा।

व्यवहार-चारित्र—असयम से निवृत्ति एव सयम में प्रवृत्ति।

व्यवहार-नय—वस्तु-परीक्षा का एक दृष्टिकोण।

व्यसन—बुरी आदत , शरीर के साथ आत्म-प्रगाढता।

व्यामोह—अपने या अपनों के लिए धन, ऐश्वर्य, यश आदि बटोरने की अन्धी वासना।

व्यावच्च—वैयावृत्य।

व्युत्सर्ग—दोष-त्याग , मानसिक, वाचिक और कायिक

एकाग्रतापूर्वक ध्येय में आत्म-प्रवृत्ति; देह-सम्बन्धी मिथ्या अनुभूति का त्याग।

व्रत—असत् आचरण से जीवन की विरति।

व्रत-परिसंख्यान—तप का एक भेद, खाद्य वस्तु या समय आदि का गणनापूर्वक नियम।



श

शक्ति—सामर्थ्य , अन्तराय कर्म के क्षय से वीर्य-प्राप्ति ।

शक्ति-जागरण—शक्ति के दुरुपयोग को रोकना ; शक्ति को जगाना, उसे ऊर्ध्वंग करना ।

शक्रस्तव—इन्द्र द्वारा की जाने वाली तीर्थंकर-स्तुति ।

शंका—सन्देह , जिन-प्रवर्तित तत्त्व-चिन्तना के प्रति सशय ।

शबरी—कायोत्सर्ग का एक दोष , हाथ से गुह्य प्रदेश को ढाँककर कायोत्सर्ग करना, भील ।

शबल—प्रदूषित चरित्र पालने वाला साधु ।

शब्दनय—शब्द के वाच्यभूत वर्तमान अर्थ को ग्रहण करने वाला नय ; शब्दार्थ का ग्राहक ।

शय्यातर—वह स्थान या घर, व्यक्ति, जहाँ साधु ठहरा हो ।

शय्यासन—साधु के बैठने-सोने के उपकरण ; फलक, पाटा आदि ।

शरीर—भोगों का आधार ; अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओं का समूह ।

शरीर-नाम—शरीर का कारणभूत कर्म ।

शरीरबंध—पाँच शरीरों का पारस्परिक बन्धन ।

शरीरी—जीव ।

शलाका—पल्य-विशेष ; एक प्रकार का नाप ; महापुरुष–२४ जिनदेव, १२ चक्रवर्ती, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव और ९ बलदेव—कुल ६३ मान्य पुरुष ।

शल्य—काँटा ; पापानुष्ठान ; विकार ; पारमार्थिक चुभन ; पीडाकारी माया ; निदान ।

शान्ति—सन्ताप का उपशम ।

शासनदेवता—अर्हत्-शासन के रक्षक देवी-देवता ।

शास्त्र—यथार्थ तथ्यों का उपदेष्टा ; विश्वसनीय एवं मार्गदर्शक ग्रन्थ ।

शिथिलाचार—दोषपूर्ण/शिथिल ढीला आचरण ।

शिथिलीकरण—शारीरिक या स्नायविक हलन ; चलन, आकुंचन या प्रसारण का पूर्णतः शान्त किया जाना ।

शिक्षाव्रत—श्रमण-धर्म के अभ्यास में हेतु रूप सामायिक आदि चार व्रत।

शिव—स्वस्तिकर अविनश्वर मुक्ति-पद।

शिष्टि—गण को शिक्षा।

शीत-परीषह—शीत-लहर का कष्ट को सहन करना।

शील—सदाचार ; ब्रह्मचर्य , व्रतों की रक्षा।

शीलव्रत—श्रावक के पाँच अणुव्रतों के रक्षक तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत।

शुक्ललेश्या—मन, वचन, काया की निश्छल निर्मल प्रवृत्ति , कदाग्रह-मुक्ति।

शुचि—मनोशुद्धि ; पवित्रता।

शुद्ध—शुभाशुभ भाव-धारा से मुक्त , पवित्रता।

शुद्धोपयोग—शुभाशुभ भावों से निरपेक्ष आत्मा के शुद्ध स्वभाव में अवस्थिति ; साम्यभाव।

शून्यवर्गणा—परमाणु-रहित वर्गणा।

शैक्ष—श्रुतज्ञान एवं व्रत-भावना में तत्पर साधु।

शैलेशी—सद्गुणों की प्रतिमूर्त दशा ; मेरु-पर्वत के समान निश्चलता ।

शैलेशीकरण—वृत्ति-चंचलता को समाप्त करना ।

शौचधर्म—अन्तर-निर्मलता का प्रयत्न ; लोभ व तृष्णा से रहित सन्तोष-भाव ; दस धर्मों में एक ।

श्रद्धा—चित्त की निर्मलता का कारण ; अभिरुचि ; आत्म-मूल्यों या आदर्श पुरुषों के प्रति निष्ठा ।

श्रमण—निष्पृह संयत साधक ।

श्रमण-धर्म—साधु का जीवन-अनुशासन ; ध्यान, स्वाध्याय आदि में प्रयत्न ।

श्रमणोपासक—श्रावक ।

श्रावक—तत्त्व-श्रमण करके कल्याण-मार्ग का अनुसरण करने वाला गृहस्थ ; श्रवण, विवेक एवं क्रिया को चरितार्थ करने वाला व्यक्ति ; अणुव्रती धर्मात्मा ।

श्रावक-धर्म—गृहस्थ-धर्म ; अणुव्रत ; श्रावक का जीवन-अनुशासन ; दया, दान, भक्ति, विनय आदि में प्रयत्न ।

श्राविका—श्रावक-धर्म का अनुसरण करने वाली महिला ।

श्रीवत्स—वक्षस्थल पर उत्कीर्ण कमलाकार चिह्न।

श्रुत—सुना हुआ ; वीतराग-प्रवर्तित तत्त्व-दर्शन , शास्त्र , ज्ञान का एक भेद—श्रुतज्ञान।

श्रुतकेवली—आत्मज्ञानी , श्रुतज्ञान की समग्रता का संवाहक।

श्रुतज्ञान—परोक्ष ज्ञान ; मन व इन्द्रियों की सहायता से होने वाला ज्ञान ; अर्थ से अर्थान्तर का ग्रहण, जैसे धुआँ देखकर अग्नि को जानना।

श्रुतस्थविर—स्थानांग एवं समवायांग आगम का वेत्ता।

श्रेणि—आकाश-प्रदेशों की पंक्ति।

श्रेष्ठी—नगर-प्रतिष्ठित धनवान् व्यक्ति ; नागरिकों में श्रेष्ठ।



ष

षट्खण्डाधिपति—चक्रवर्ती राजा ; छह खण्डभूत भरतक्षेत्र का स्वामी ।

षडावश्यक—नित्य करणीय प्रतिक्रमण आदि छः कर्तव्य ।



स

सकलादेश—एक गुण की अपेक्षा से समस्त वस्तु पर विचार।

सकलेन्द्रिय—पंचेन्द्रिय जीव ; पूर्ण इन्द्रिय-सम्पन्न जीव।

संकर—अयोग्य ओर असंयमी जनो से मिश्रण।

संकोच—सिमटना, छोटे अधिकरण में भी बडे द्रव्य का अपनी परिपूर्णता से समायोजन।

संक्रमण—परिवर्तन, एक प्रकृति का अन्य प्रकृति में प्रवेश।

संक्लेश—आर्त और रौद्र ध्यान रूप परिणाम।

संखड़ी—प्राणियो की आयु खण्डित करने वाली प्रकरण-क्रिया।

सख्यात—संख्येय ; वह संख्या, जो पाँच इन्द्रियों की विषय बन सकती हो।

संख्या-प्ररूपणा—परिमाण का कथन।

संग्रह—नय-विशेष, प्रत्येक जाति के अनेक द्रव्यो में जाति की अपेक्षा एकत्व की दृष्टि, परिग्रह।

संघ—समूह, श्रावक-श्राविका एवं साधु-साध्वी की सामूहिक व्यवस्था, गुणो का समुदाय, गणो का समूह।

संघ-नायक—आचार्य।

संघस्थविर—संघनायक।

संघात—परमाणुओ के संयुक्त/संश्लिष्ट होने की क्रिया।

सचित्त—चैतन्य-सहित अवस्था; जीवन-सयुक्तता।

सचित्ताहार—जीव की गतिविधियो से युक्त आहार।

संज्वलन—कषाय के साथ एकीकृत होकर की जाने वाली अभिव्यक्ति।

संज्ञा—इन्द्रिय-ज्ञान, वासना; वांछा; ये चार हैं—आहार, भय, मैथुन, परिग्रह।

संज्ञी—समनस्क; मन-सहित।

सत्—होना; द्रव्य का लक्षण; स्वकीय गुणो एवं पर्यायो का परिव्यापक; उत्पत्ति, ह्रास एव स्थायित्व युक्त तत्त्व।

सत्ता—सत् का स्वरूप।

सत्य—प्रामाणिकता की प्रस्तुति, क्लेश-रहित मधुर वचन-व्यवहार; दूसरा व्रत; दस धर्मों में चौथा।

सत्यासत्य—असत्य के आश्रित सत्य वचन।

सत्त्व—जीव; कर्मों का अस्तित्व; आत्मद्रव्य की मौलिकता।

सत्त्वप्रकृति—बंध की सम्भावनाओ से मुक्त कर्म-प्रवृत्ति।

संथारा—सल्लेखना; जीवन-पर्यन्त अनशन: देखें—सल्लेखना।

सद्गुरु—आत्म-जागृत वीतराग-पुरुष ।

सधर्मा—धर्म-पथ पर चलने वाला समकक्ष व्यक्ति, साधर्मी भाई ।

सन्तोषव्रत—परिग्रह का परिमाण ।

सन्निकर्ष—भावों का संयोग ।

सन्निवेश—देश के अधिपति का अवस्थान ।

संन्यास—असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति ।

सपक्ष—वह स्थान, जहाँ साध्य का सजातीय धर्म रहता है ।

सप्तक्षेत्र—जिनचैत्य, जिन-बिम्ब, धर्मशास्त्र, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका—ये सात धन-व्यय साधन ।

सम—समता, समानता, रूक्ष पुद्गल-परमाणु के समान स्निग्ध पुद्गल-परमाणु ।

समकित—सम्यक्त्व । देखें—सम्यक्त्व/सम्यग्दर्शन ।

समता—तुच्छ एवं मूल्यवान् वस्तु या स्थिति के प्रति तटस्थता, अनुद्विग्नता, माध्यस्थ-भाव ।

समनस्क—संज्ञी जीव, मन-युक्त जीव, स्मृति-सम्पन्न जीव ।

समनोज्ञ—सम्भोग-सम्पन्न ; मनोज्ञ ज्ञानादि से युक्त जीव ।

समभिरूढ़ नय—किसी शब्द का एक ही पदार्थ के लिए रूढ

होना ; समान लिंग वाले एकार्थवाची शब्दों में भी अर्थभेद स्वीकार करने वाला दृष्टिकोण ।

समय—काल का वह अंश जिसका विभाग नही किया जा सकता ; जीव ; चैतन्य-स्वभाव ; आत्मा ; धर्म या मत ।

समयसार—विकल्प-मुक्त आत्म-स्वभाव ।

समाचार—आचार-दर्शन ; अतिचार-रहित आचरण ।

समाचारी—आचारपरक अनुशासन ; साधु की आचार-संहिता ।

समाधि—अन्तरंगीय स्वास्थ्य का सेवन ; स्थिति ; निर्विकल्प ध्यान ।

समाधिमरण—आत्म-साधना के साथ शान्तिपूर्वक देह का विसर्जन ।

समारम्भ—दूसरो को सन्ताप पहुँचाने वाला व्यापार ; हिंसा का आचरण ।

समिति—यतनाचारपूर्वक प्रवृत्ति ।

समुदय—अनन्त संघातों का प्रचय ।

समुद्घात—कर्म-निर्जरा विशेष ; आत्म-प्रदेशो का विस्तार ; मूल शरीर को त्याग किये बिना जीव के प्रदेशों का बाहर निकलना ।

सम्पराय—कर्मों के द्वारा आत्मा का पराभव ; चतुर्गति स्वरूप संसार ।

सम्भोग—साधुओं में वस्त्र-पात्र आदि का आदान-प्रदान ।

सम्मूर्च्छन—जन्म-विशेष , स्त्री-पुरुष के संयोग के बिना ही जीवों की उत्पत्ति , बाहरी वातावरण के संयोग से जन्मे जीव ।

सम्मूर्च्छिम—त्रस-भेद , रजवीर्य के विना शरीर-रचना से उत्पन्न जीव । देखें—सम्मूर्च्छन ।

सम्मोह—अतिशय मूढ़ता ।

सम्यक्—समुचित ; यथार्थ ।

सम्यक्चारित्र—मोक्ष-मार्ग पर विचरण , अन्तरमार्ग की ओर गति , संयम-जीवन का पालन ।

सम्यक्त्व—अस्तित्व-बोध , सत्य के प्रति जिज्ञासा एवं उसके प्रति निष्ठा , तत्त्वार्थ-श्रद्धान । देखें—सम्यग्दर्शन ।

सम्यक्त्व-क्रिया—सम्यक्त्व बढाने वाली आचार-वृत्ति ।

सम्यक्त्व मिथ्यात्व—फल देने वाली शक्ति को कुंठित करने वाली मिश्रित कर्म-स्थिति ।

सम्यक् मिथ्यादृष्टि—मिश्रदृष्टि वाला जीव ; सत्य और असत्य—दोनो तत्त्वों के प्रति विश्वासी ।

सम्यक्त्व मोहनीय—जिसके उदय से आप्त, आगम और पदार्थों के प्रति श्रद्धा में शिथिलता आती है।

सम्यक्त्व-वेदनीय—देखें—सम्यक्त्व मोहनीय।

सम्यक्श्रुत—जिनेश्वर द्वारा प्रज्ञप्त शास्त्र।

सम्यग्ज्ञान—पदार्थों का अधिगम ; यथार्थ ज्ञान।

सम्यग्दर्शन—तत्त्वश्रद्धान ; आत्म-रुचि ; देव, गुरु, धर्म के प्रति निष्ठा। देखें—सम्यक्त्व।

सम्यग्दृष्टि—सत्यनिष्ठ ; तत्त्व पर श्रद्धा रखने वाला जीव ; विवेकी।

संयत—संयती पुरुष।

संयतासंयत—अणुव्रतो का पालन ; स्थूल पापो से निवृत्ति।

संयम—मन, वचन, काया का नियन्त्रण ; इन्द्रिय-जय एवं कषाय-निग्रह।

संयोजना—भोजन-दोष ; विरुद्ध भोजन-पानी का मिश्रण।

संयोग केवली—अर्हत्-अवस्था ; साधक की तेरहवी भूमि, जहाँ केवलज्ञान हो जाने पर भी देह शेष रहने से प्रवृत्ति वनी रहती है।

संरम्भ—हिंसा का संकल्प ; प्रमाद।

सरस्वती—जिनवाणी।

सरागचारित्र—निश्चय चारित्र का साधन; साधु-जीवन स्वीकार करने के वावजूद रागादिवश अपवाद-मार्ग की स्वीकृति।

सरागसंयम—हिंसा आदि से निवृत्ति। देखें—सरागचारित्र।

सर्वज्ञ—जिनभगवान्, सर्व पदार्थों/पर्यायो का ज्ञाता।

सर्वतोभद्र—सभी प्रकार से सुखी, चक्र-विशेष; यन्त्र-विशेष; शुभ और अशुभ के ज्ञान का साधनभूत एक चक्र; देवों का विमान विशेष।

सर्वदर्शी—अरिहन्त; समस्त वस्तुओ के पारदर्शी।

सर्वविरति—पूर्ण संयम; पापकर्म से पूर्णतया निवृत्ति।

सर्वार्थ—अहोरात्र का उनतीसवाँ मुहूर्त; एक सर्वश्रेष्ठ अनुत्तर देव-विमान।

सर्वार्थसिद्धि—देखें—सर्वार्थ।

सर्वोदय-तीर्थ—प्रत्येक प्राणी के अभ्युदय का कारण।

सल्लेखना/संलेखना—अनशन-व्रतपूर्वक शरीर-त्याग का अनुष्ठान।

संवत्सर—वर्ष।

संविग्न—मोक्ष-सुख का इच्छुक।

संवेग—धर्म के प्रति अनुराग।

संवेजनीकथा—पुण्य-फल की चर्चा; सद्विचारों का उपदेश।

संव्यवहार—प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप समीचीन व्यवहार।

सविकल्प—विकल्प-युक्त; परिणाम; वैचारिक ऊहापोह।

सविकल्प चारित्र—विशुद्ध आत्मा से राग-द्वेषादि रूप विकल्पों की निवृत्ति।

सविचार—अर्थ, शब्द और योग का संक्रमण।

संशय—सन्देह; निश्चय का अभाव; 'ऐसा है या ऐसा' की मनोभावना।

संशय-मिथ्यात्व—वस्तु-स्वरूप के निश्चय का अभाव।

संश्लेषबन्ध—रूक्ष एवं स्निग्ध द्रव्यों का परस्पर में बन्ध।

संसक्तश्रमण—संसर्ग-युक्त साधु; भोजन-प्राप्ति या प्रतिष्ठा-प्राप्ति के लिए तप, प्रवचन आदि करने वाला साधु।

संसार—जगत; जीव की अशुद्ध दशा; नरक, तिर्यंच, मनुष्य एवं देवगति में परिभ्रमण; जन्मान्तर में गमन।

संसारानुप्रेक्षा—संसार की नश्वरता का अनुचिन्तन।

संसारी—संसार स्थित जीव।

संस्रुति—ससार ; कर्मास्रव एवं शरीर-धारण की परम्परा। देखें—संसार।

संस्कार—वासना ; धारणा . स्मृति का आधार ; ज्ञान से उत्पन्न एवं अन्य ज्ञान का कारण।

संस्तव—स्तुति , विद्यमान या अविद्यमान गुणो की वाणी द्वारा अभिव्यक्ति।

संस्तार/संस्तारक—पौषध करने वाले श्रावक द्वारा बिछाने के लिए उपयोग किये जाने वाले डाभ, जूट, कुश, कम्बल, वस्त्र आदि के बिछौने या आसन अथवा लकडी का पाटा।

संस्थान—आकार-विशेष ; कर्म-विशेष ; शरीर की शुभ या अशुभ आकृति की रचना करने वाला कर्म।

संस्थानविचय—धर्म-ध्यान का एक भेद ; लोक की विविध अवस्थाओं एवं आकृतियो का चिन्तन।

संस्वेदज—त्रस का भेद ; पसीने से उत्पन्न होने वाले जीव। जैसे लीख, जूँ आदि।

संहनन—हड्डियों की रचना ; अस्थियो की सन्धियों का कारण-भूत कर्म।

संहिता—आचार-शास्त्र ; धर्मदेशना ; पदों का उच्चारण ।

साकल्य—वस्तु की अनन्त धर्मात्मकता ।

सागर/सागरोपम—दस कोटाकोटि पल्यो/पल्योपमों के बराबर का एक अवधि-सूचक माप ।

सागार—अणुव्रतों का परिपालक ।

सागारधर्म—श्रावक धर्म ।

साड़ा—साध्वियों के पहनने का चोलपट्टक ।

सातागौरव—भोजन, शयन आदि में विशेष प्रेम ।

सातावेदनीय—शारीरिक और मानसिक सुखों का अनुभव करने वाला कर्म/पुण्य ।

साथिया—स्वस्तिक । देखें—स्वस्तिक ।

साधक—आत्म-ध्यान में तत्पर ; शास्त्रों का ज्ञाता ; अध्यात्म-जीवी ; निष्पादक ।

साधन—विवक्षित पदार्थ की उत्पत्ति का निमित्त ; लिंग ; दर्शन, ज्ञान आदि परिणामों का निष्पादन ।

साधर्मिक—धर्म-मार्ग का सहचर ; समान धर्म वाला ।

साधर्म्य—साधन में निश्चितता , प्रकृति/गुणो की समानता ।

साधर्म्यदृष्टान्त—साध्य और साधन की व्याप्ति की

निश्चितता, जैसे धुएँ के द्वारा अग्नि सिद्ध करने में रसोई घर का दृष्टान्त।

साध्य—लक्ष्य, निष्पन्न होने योग्य; साधने के लिए शक्य; वादी को अभीष्ट; प्रस्ताव का विधेय।

सापेक्षता—अपेक्षा-भेद, निर्भरता।

सामानिक—देव-विशेष, इन्द्र के समकक्ष देवता।

सामान्य—वस्तु के समान परिणाम का नाम, सदैव पाये जाने वाले गुण, अनेक व्यक्तियों में भी अभेदता का कारण।

सामायिक—समत्वयोग, प्रतिकूल परिस्थितियों में भी स्वयं को उनसे अप्रभावित रखना, निर्धारित समय तक धर्म-ध्यान में अवस्थिति।

सामायिकचारित्र—समता भाव; शुभाशुभ संकल्प-विकल्पों का त्याग, समाधि।

साम्परायिक—देखें—सम्पराय।

सालम्बध्यान—अरिहंत के रूप का चिन्तन; धर्म-ध्यान; जिनप्रतिमा का ध्यान।

सावद्य-योग—हिंसक कार्यों में बुद्धि का उपयोग; प्राणी-पीडाकारी प्रवृत्ति।

सावद्य-वचन—प्राणी पीडाकारी भाषा।

सासादन—गुणस्थानक विशेष ; साधक की दूसरी भूमिका ; इसकी प्राप्ति एक क्षण के लिए तब होती है, जब साधक कर्मोदयवश सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व की ओर अभिमुख होता है, किन्तु मिथ्यात्व-दशा में प्रवेश नहीं पाता।

सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष—इन्द्रिय और मन के द्वारा उत्पन्न होने वाला ज्ञान।

सिद्ध—परमात्मा ; कर्म-मुक्त हो जाने पर देह छोड़कर लोकाग्र स्थित होने वाला ; प्रभावक-पुरुष ; सिद्धि सम्पन्न योगी।

सिद्धि—मोक्ष-प्राप्ति ; कार्य की परिपूर्णता ; शक्ति-विशेष।

सुषम-दुषमा—काल-विशेष ; अवसर्पिणी-काल का तीसरा और उत्सर्पिणी का चौथा आरा; दो कोटाकोटि सागरोपम का काल।

सुषम-सुषमा—काल-विशेष ; अवसर्पिणी का पहला और उत्सर्पिणी का छठा आरा ; चार कोटाकोटि सागरोपम का काल।

सुषमा—काल-विशेष, अवसर्पिणी का दूसरा और उत्सर्पिणी का पाँचवाँ आरा; तीन कोटाकोटि सागरोपम का काल।

सूक्ष्मकाय—वे जीव, जिनका जल, अग्नि और वायु से प्रतिघात नही होता।

सूक्ष्मजीव—वे जीव, जिनका शरीर दूसरे पुद्गलों द्वारा रोका नही जा सकता।

सूक्ष्मत्व—इन्द्रियजन्य ज्ञान का विषय न होना, सिद्धों के आठ गुणों में से एक।

सूक्ष्मसाम्पराय—साधक की दसवो भूमिका; जहाँ अतिशय सूक्ष्म कषाय का अस्तित्व रहता है, जहाँ कषायों के समाप्त हो जाने के बाद भी राग या लोभ का सूक्ष्म लव जीवित रहता है।

सूक्ष्मसाम्परायचारित्र—सूक्ष्म साम्पराय। देखें—सूक्ष्म-सम्पराय।

सूत्र—सूक्ष्म अर्थ-सूचक वाक्य।

सूरि—आचार्य, दीक्षादाता, आचार का परिपालक एवं शिष्यों के अनुग्रहों में दक्ष।

स्कन्ध—दो या दो से अधिक परमाणुओ के संयोग से उत्पन्न भौतिक तत्त्व।

स्कन्धदेश—स्कन्ध का आधा भाग।

स्कन्धप्रदेश—स्कन्धदेश का आधा भाग।

स्कन्धबीज—कन्दभाग से पैदा होने वाली वनस्पतियाँ, जैसे कदली, पिंडालू आदि।

स्तनदृष्टिदोष—कायोत्सर्ग का एक दोष; स्तनो पर ध्यान केन्द्रित करना।

स्तव—अर्हत्-प्रार्थना। देखें—संस्तव।

स्तुति—गुणो का बखान। देखें—स्तव।

स्तेनप्रयोग—अचौर्य-अणुव्रत का एक अतिचार, अन्य व्यक्ति को चोरी करने के लिए प्रेरित करना।

स्तेय—किसी वस्तु को उसके स्वामी की अनुमति के बिना ग्रहण करना; चोरी।

स्तोक—सात प्राण/उच्छ्वास का एक स्तोक।

स्त्रीकथा—स्त्रियों की कामोत्तेजक चर्चा करना।

स्थंडिल-भूमिका—खुला मैदान; शौच-क्रिया के लिए प्रासुक स्थान।

स्थविर—वृद्ध मुनि ; धर्म में खिन्न होने वालों को प्रोत्साहन देने वाला।

स्थविरकल्प—निर्धारित अनुशासन का परिपालन. गच्छ में रहने वाले मुनियों का अनुष्ठान।

स्थापना-निक्षेप—धारणा, किसी पुरुष या पदार्थ के चित्र, प्रतिमा या कल्पित आकार को 'यह वही है' ऐसा मानकर विनय-व्यवहार करना।

स्थापनाजिन—जिनेश्वर की प्रतिमा।

स्थावर—एक स्थान में रहने वाले जीव।

स्थिति—ठहरना, अधर्म द्रव्य का स्वरूप।

स्थितिकल्प—आचार्यगुण, शास्त्रोक्त साधु-समाचार में अवस्थित।

स्थितिबन्ध—कर्म का अपने स्वभाव में रहना।

स्थिरीकरण—मोक्ष-मार्ग में आत्म-स्थिति, धर्म-मार्ग से स्खलित हो जाने पर पुनः मार्गारूढ करना।

स्थूल—मोटा, विच्छिन्न किये जाने पर भी वापस सम्बद्ध होने वाला, जैसे दूध पानी आदि।

स्थूलकाय—सूक्ष्मकाय से भिन्न जीव ; जो पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु द्वारा रोके जा सकें।

स्नातक—कर्म-मुक्त ; केवली ।

स्निग्ध—बन्ध का हेतु ; धनात्मक ; परमाणु का आकर्षण गुण ; स्पर्श संयोग के होने पर पदार्थों के बन्ध का कारण ।

स्पर्शन—वह इन्द्रिय, जिसके द्वारा स्पर्श किया जाता है ।

स्फोट—अर्थ प्रकट करने वाली चैतन्य-शक्ति ।

स्मृति—अनुभूत पदार्थ को विषय करने वाली ; स्मरण ।

स्यात्—समन्वय स्थापित करने वाला एक निपात ; एकान्त हठ का निरोधक ।

स्याद्वाद—अनेकान्तात्मक वस्तु का कथन ; वस्तु के जटिल का विश्लेषक समन्वयकारी न्याय ।

स्वदार-सन्तोषव्रत—अपनी पत्नी से ही सन्तोष करना ; ब्रह्मचर्य-अणुव्रत । देखें—ब्रह्मचर्य ।

स्वभाव—निजत्व ; निष्पक्ष भाव ।

स्वयंबुद्ध—आत्म-जाग्रत-पुरुष ; वे साधक जो स्वयं ही प्रबुद्ध हुए हैं ।

स्वलिंग—श्रमण-वेश/परिवेश ; रजोहरण, मयूरपिच्छी, मुख-वस्त्रिका, चोलपट्टक, साड़ा आदि ।

स्वलिंगसिद्ध—स्वलिंग में कैवल्य-प्राप्ति।

स्वसमय—शुद्ध आत्मा में ही अपनत्व का दर्शन।

स्वस्तिक—साथिया, संसार-भ्रमण का बोधक चिन्ह; चतुर्गति का प्रतीक; मांगलिक चिह्न।

स्वाध्याय—शास्त्र-अध्ययन; तप का प्रमुख भेद, जीवन का पर्यालोचन एवं आत्मचिन्तन।

स्वार्थाधिगम—मति, श्रुत आदि रूप ज्ञान।

स्वार्थानुमान—किसी दूसरे के उपदेश के बिना स्वय ही निश्चित साधन से साध्य का ज्ञान करना।



ह

हरि—अरिहन्त ; प्राणियो के दुखो का हरण करने वाला ।

हिंसा—जीववध ; प्राणातिपात ; रागादि की उत्पत्ति ; अयतनाचार रूप प्रमाद ।

हिंसादान—प्राणी-पीडाकारी या वधकारी उपकरण का विनिमय ।

हुण्डकसंस्थान—कर्म-विशेष ; अंगोपागो को विरूप/वेडौल करने वाला कर्म ।

हेतु—कारण ; निमित्त ; अनुमान का साधन ; प्रमाण ।

हेतुवाद—तर्कवाद ; युक्तिवाद ; हेतु का प्रतिपादन ।

होता—अध्यात्म-वह्नि में कर्म रूप हव्य-सामग्री का होम करने वाला ; अध्यात्म-साधक ।